पूसा सुरभि

अप्रैल–सितंबर 2021

ISSN : 2348-2656

सत्रहवां अंक

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

ISSN : 2348-2656

सत्रहवां अंक

पूसा सुरभि

(अप्रैल - सितंबर, 2021)

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली-110012

पूसा सुरभि
(अप्रैल - सितंबर, 2021)

संरक्षक एवं अध्यक्ष
डॉ. अशोक कुमार सिंह
निदेशक

संपादक
केशव देव
उप निदेशक (राजभाषा)

संपादन मंडल
डॉ. दिनेश कुमार, प्रधान वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान संभाग
राजेन्द्र शर्मा, मुख्य तकनीकी अधिकारी, कृषि ज्ञान प्रबंधन इकाई
सुनीता, सहायक निदेशक (राजभाषा)

संपर्क सूत्र
उप निदेशक (राजभाषा)
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012
दूरभाष: 011-25842451

ISSN - 2348-2656

आवश्यक सूचना
इस अंक में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

मुद्रण: फरवरी, 2022
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली के लिए हिंदी अनुभाग द्वारा प्रकाशित एवं
मै. एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028
फोनः 7838075335, 9899355565, 9899355405, ईमेलः msprinter1991@gmail.com

आमुख

विगत वर्षों में कोविड महामारी ने अन्य क्षेत्रों के अतिरिक्त हमारे देश की कृषि को भी प्रभावित किया है। सभी किसान भाइयों एवं बहनों ने कोविड संकट का बड़ी दृढ़ता एवं विश्वास के साथ सामना किया है और देश की जनता को आपने खाद्य पदार्थों एवं अन्य कृषि वस्तुओं की कमी नहीं आने दी। निश्चित तौर पर इस उपलब्धि के लिए आप बधाई के पात्र हैं। परंतु हमारी चुनौतियां कभी कम नहीं होती हैं। कृषि क्षेत्र से लगातार उत्पादन लेने के कारण अनेक समस्याएं अभी भी बनी हुई हैं। उदाहरण के लिए मृदा स्वास्थ्य में गिरावट और खेती के लिए उपलब्ध जल में लगातार कमी एक गंभीर चुनौती है। इन परिस्थितियों में किसान भाई एवं बहन कृषि उत्पादन में उत्तम कृषि क्रियाएं (गुड एग्रीकल्चरल प्रैक्टिसेज) अपनाकर बहुत सारी समस्याओं का समाधान पा सकते हैं। उत्तम कृषि क्रियाओं के अंतर्गत मुख्य रूप से सही बीजों एवं फसल की किस्मों, उचित विधि और समय पर बुवाई अथवा रोपाई, बीज उपचार, फसल चक्रों द्वारा विविधीकरण, समेकित एवं परिशुद्ध फसल पोषण, समेकित कीट-पीड़क प्रबंधन, पादप-पीड़क प्रबंधन, खरपतवार प्रबंधन, दक्ष एवं सूक्ष्म सिंचाई और सही समय पर कटाई, आदि उत्तम कृषि क्रियाओं को अपनाकर किसान भाई अपनी फसल की पैदावार और आमदनी दोनों बढ़ा सकते हैं। साथ ही इन क्रियाओं को अपनाने से मृदा, जल एवं पर्यावरण के स्वास्थ्य में भी वृद्धि होती है।

खेती-बाड़ी में किसान भाइयों को मौसम की सटीक जानकारी का उपलब्ध होना भी नितांत आवश्यक है। इसी प्रकार कृषि अनुसंधानों के माध्यम से प्राप्त नई तकनीकियों के ज्ञान का होना भी अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। मौसम एवं कृषि तकनीकियों की जानकारी के लिए आज संचार के विभिन्न आधुनिक साधन यथा- रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र, टेलीफोन, मोबाइल फ़ोन और इंटरनेट आदि उपलब्ध हैं, जिनका लाभ किसान भाई उठा सकते हैं। इस दिशा में हमारे संस्थान के यू-ट्यूब चैनल का भी किसान भाई लाभ उठा सकते हैं। इस चैनल पर प्रति सप्ताह कृषि एवं मौसम संबंधी (https://www.youtube.com/channel/UCa6VBQwDCiQ2N11XdtCcbnQ) नवीनतम जानकारियों पर एपिसोड उपलब्ध करवाया जाता है, जिसका प्रसारण आमतौर पर प्रत्येक शनिवार को किया जाता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान अपने अनुसंधान और प्रशासनिक कामकाज में भारत सरकार की राजभाषा हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग के लिए संकल्पित है। संस्थान इस हेतु राजभाषा हिंदी के माध्यम से किसान व जन-सामान्य को, विविध कृषि संबंधी जानकारियां निरंतर उपलब्ध करवा रहा है। संस्थान की गृह पत्रिका **"पूसा सुरभि"** इसमें अहम भूमिका में है। पत्रिका का **सत्रहवां अंक** आपके संमुख है। मैं पत्रिका के इस सफल प्रकाशन के लिए श्री केशव देव, उप निदेशक (राजभाषा) एवं सुश्री सुनीता, सहायक निदेशक (राजभाषा) को बधाई देता हूं। पत्रिका को आकर्षक बनाने के लिए संपादन मंडल के सदस्य डॉ दिनेश कुमार, प्रधान वैज्ञानिक एवं श्री राजेंद्र शर्मा, मुख्य तकनीकी अधिकारी को भी बधाई देता हूं। साथ ही इस अंक में सम्मिलित लेखों के लेखकों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूं, जिनके द्वारा उपलब्ध कराई गई सामग्री से यह प्रकाशन संपन्न हुआ। आशा है कि यह प्रकाशन सर्वोपयोगी साबित होगा।

(अशोक कुमार सिंह)
निदेशक

संपादकीय

प्रत्येक राष्ट्र का अपना चिंतन और अपनी भावनाएं होती हैं जिनको वह भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है। भाषा न केवल हमारे विचारों को संप्रेषित करती है बल्कि वह उसको बोलने वालों की संस्कृति और संस्कार की झलक भी प्रदर्शित करती है। जहां एक ओर वह अपनी सांस्कृतिक विरासत में जन्म लेती है, वहीं दूसरी ओर वह इस विरासत को पीढ़ी-दर-पीढ़ी पहुंचाने के दायित्व का निर्वहन भी करती है। यह तो समाज की भागीरथी है, जब शताब्दियों तक कोई समाज तपता और संघर्ष करता है, तब जाकर वह भाषा पाता है। हमारे विभिन्न भाषा बोलियों वाले देश में संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त 22 भाषाएं हैं जिनमें प्रत्येक का अपना इतिहास है और इनकी जड़ें देश की संस्कृति में गहराई तक फैली हुई हैं। ये सभी भाषाएं भारतीय संस्कृति की धरोहर की पोषक हैं। इन्हीं भाषाओं में एक भाषा हिंदी, जिसको संविधान में संघ की राजभाषा का दर्जा प्राप्त है और यह भारतीय संस्कृति की अस्मिता के लिए निरंतर अग्रसर है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार और गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग द्वारा इसके लिए निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु पुरजोर प्रयासरत है। संस्थान द्वारा हिंदी में किसान व जन-सामान्य उपयोगी विभिन्न प्रकाशन निकाले जा रहे हैं। इसी क्रम में संस्थान की गृह पत्रिका **'पूसा सुरभि'** का **सत्रहवां अंक** आपको हस्तगत है। यह पत्रिका संस्थान की कृषि तकनीकियों को देश के दूरस्थ एवं सीमांत क्षेत्रों के किसान व जनमानस तक पहुंचाने का प्रयास कर रही है। पत्रिका के तकनीकी और विविधा खंड में विभिन्न विषयों से संबंधित किसानों एवं जन-सामान्य उपयोगी ज्ञानवर्धक लेख एवं राजभाषा खंड में संस्थान और क्षेत्रीय केंद्रों की राजभाषा गतिविधियां हैं। साथ ही पिछले अंकों में प्रकाशित कृषि जगत की जानी मानी एक हस्ती के जीवन परिचय की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए इस अंक में एक और हस्ती डॉ राम बदन सिंह के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके कृषि क्षेत्र में दिए गए बहुमूल्य योगदान को संकलित करने का लघु प्रयास किया गया है।

पूसा सुरभि पत्रिका के निरंतर प्रकाशन की अनुमति और राजभाषा कार्यान्वयन के लिए कुशल दिशा-निर्देशों हेतु संस्थान के निदेशक एवं अध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वयन समिति डॉ अशोक कुमार सिंह के प्रति हम कृतज्ञ हैं। इस अंक की सामग्री को मूर्तरूप देने के लिए संपादन मंडल के सदस्य डॉ दिनेश कुमार, प्रधान वैज्ञानिक तथा श्री राजेंद्र शर्मा, मुख्य तकनीकी अधिकारी के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। कुमारी सुनीता, सहायक निदेशक (राजभाषा) एवं श्रीमती कृति शर्मा, हिंदी अनुवादक को भी मैं धन्यवाद देता हूँ जिनके सहयोग के बिना पत्रिका का संपादन संभव नहीं था। इसके साथ-साथ पत्रिका हेतु सामग्री उपलब्ध कराने वाले वैज्ञानिकों, तकनीकी. प्रशासनिक कार्मिकों एवं अन्य सहयोगियों, जिनके अथक सहयोग से यह प्रकाशन सफल हुआ, उन सभी के प्रति भी मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। यह अंक कैसा लगा? पत्रिका को और अधिक आकर्षक व ज्ञानवर्धक बनाने के बारे में आपके बहुमूल्य विचारों/सुझावों की हमेशा प्रतीक्षा रहेगी।

(केशव देव)
उप निदेशक (राजभाषा)

विषय सूची

आमुख (iii)

संपादकीय (v)

तकनीकी खंड...

1. डॉ. आर. बी. सिहं : शिक्षाविद, कृषि क्षेत्र के ज्ञाता एवं अनुसंधान और विकास के नेतृत्वकर्ता: संक्षिप्त जीवन परिचय 3
   - अशोक कुमार सिंह, राजबीर यादव एवं कुमार दुर्गेश
2. विदेशी सब्जियों की वैज्ञानिक खेती 6
   - गोगराज सिहं जाट, जोगेन्द्र सिहं, सचिन कुमार एवं बी.एस. तोमर
3. परंपरागत खेती से व्यावसायिक खेती में बदलाव कर किसान आमदनी बढ़ाएं 9
   - रमेश चंद हरित, योगेश कुमार, श्रवण कुमार सिहं एवं सूरा नरेश कुमार
4. नाशीकीट प्रबंधन में कीट फेरोमोन की उपयोगिता 14
   - सुरेश एम नेबापुरे, सागर डी एवं संजीव रंजन सिन्हा
5. फसल अवशेषों का प्रबंधन एवं वैकल्पिक उपयोग 17
   - रणबीर सिंह, शिवाधर मिश्र एवं अंचल दास

विविधा....

1. कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानांतरण केंद्र (कैटेट) - एक परिचय 27
   - जे.पी.एस. डबास
2. अधिक आय व स्वावलंबन हेतु उन्नत किसानों की प्रेरणास्त्रोत गाथा : आत्मनिर्भर कृषक 31
   - प्रतिभा जोशी, जय प्रकाश डबास, निशि शर्मा, नफीस अहमद, सर्वाशीष चक्रवर्ती, गिरिजेश सिंह महरा, अल्का जोशी, श्रुति सेठी एवं गोगराज सिंह जाट
3. जैव संवर्धन एवं कुपोषण मुक्त भारत 35
   - मुरलीधर असकी, एच. के. दीक्षित, ज्ञान प्रकाश मिश्रा एवं रणबीर सिंह धमेन्द्र सिंह, प्राची यादव, दिलीप कुमार एवं रणबीर सिंह
4. दोगुनी आमदनी का स्रोतः केंचुआ खाद (वर्मी कंपोस्ट) 40
   - शिवाधार मिश्र एवं रणबीर सिंह
5. एक साधारण फल मक्खी (ड्रोसोफिला) के अध्ययन की कहानी जो बनी आनुवंशिकी विज्ञान का आधार 47
   - प्राची यादव एवं बी. सुनीता
6. जी एम फसलें: असीम संभावनाओं का क्षेत्र 52
   - अतुल कुमार, ज्ञान प्रकाश मिश्र, शैलेन्द्र कुमार झा एवं कुमार दुर्गेश
7. जैविक खेती आज के समय की मांग और मुख्य आवश्यकता 55
   - राजेश कुमार एवं सुनील पब्बी
8. दलहनः वर्तमान परिदृश्य, चुनौतियां एवं संभावनाएं 58
   - राजू आर., मुरलीधर अस्की एवं रणबीर सिंह

9. प्रकृति का बहुमूल्य वरदान : गुलाब से सुगंधि 64
- नमिता, एम. के. सिंह, एस. एस. सिंधु, ऐ. एस. धामा, हरेन्दर यादव एवं आशा कुमारी
10. हरी सोयाबीन- एक स्वास्थ्य वर्धक एवं अर्थकारी फसल 71
- राहुल कुमार, अरूण कुमार, मोनिशा सैनी, मनियारी ताकू, अक्षय तालुकदार
11. कुलवंत गाथा : उत्तम खेती सफल किसान, ये है आधुनिकता का प्रमाण 74
- जे.पी.एस. डबास, निशी शर्मा, निर्मल चंद्रा, प्रतिभा जोशी, नफीस अहमद, सर्वाशीष चक्रवर्ती एवं आनंद विजय दुबे

राजभाषा खंड...

1. संस्थान में राजभाषा संबंधी गतिविधियां 79
2. पुरस्कार व सम्मान 92

तकनीकी खंड...

डॉ. आर. बी. सिंह: शिक्षाविद, कृषि क्षेत्र के ज्ञाता एवं अनुसंधान और विकास के नेतृत्वकर्ता: संक्षिप्त जीवन परिचय

अशोक कुमार सिंह*, राजबीर यादव[1] एवं कुमार दुर्गेश[2]
आनुवंशिकी संभाग[1,2]
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110 012

कृषि क्षेत्र के महान वैज्ञानिक, नेतृत्वकर्ता एवं नीति निर्माता डॉ. राम बदन सिंह का जन्म 20 जुलाई, 1940 को जिला गाजीपुर, उ.प्र. में पिता (स्वर्गीय) श्री दरबारी सिंह एवं माता (स्वर्गीय) श्रीमती मनराजी जी के घर हुआ था। बचपन से ही प्रतिभाशाली डॉ. आर. बी. सिंह की हाई स्कूल की शिक्षा श्री महन्थरम बरन दास इंटर कॉलेज मुड़कुड़ा, गाजीपुर में वर्ष 1959 में संपन्न हुई। वे अपनी आगे की शिक्षा के लिए बनारस आ गए। जहां उन्होंने उदय प्रताप सिंह महाविद्यालय से सन् 1954 में इंटरमीडिएट की शिक्षा प्राप्त की।

शिक्षा के धुनी डॉ. सिंह ने अपनी स्नातक (1954-56) एवं परास्नातक (1956-60) शिक्षा तात्कालीन पत्थर कॉलेज (वर्तमान में चंद्रशेखर आज़ाद कृषि एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, कानपुर) से उत्तीर्ण की। इनकी विलक्षण प्रतिभा एवं उत्कृष्ट शैक्षणिक प्रदर्शन के लिए इन्हें स्वर्ण पदक से पुरस्कृत किया गया। आगे पी.एच.डी की उपाधि के लिए इन्होंने विश्वस्तरीय प्रख्यात नार्थ कैरोलिना स्टेट विश्वविद्यालय को चुना। यहां इन्होंने डॉ. बेन डब्ल्यू स्मिथ के निर्देशन में "सेक्स डिटर्मिनेशन इन रूमेक्स" विषय में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। देश सेवा एवं इसके लिए योगदान की इनकी प्रबल इच्छा ने, इन्हें अमेरिका की चमक-दमक छोड़कर देश वापस आने हेतु प्रेरित किया।

वर्ष 1965 में डॉ. सिंह ने पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के हिसार परिसर में आर्थिक वनस्पति शास्त्री (कपास) एवं सहायक प्राध्यापक के रूप में अपने व्यावसायिक जीवन की शुरुआत की। अपने व्यावसायिक जीवन की शुरुआत से ही डॉ. सिंह ने कृषि आजीविका, खाद्य सुरक्षा, पारिस्थितिकी संवेदनशीलता एवं जलवायु अनुरूप खेती के क्षेत्र में नीति निर्माण में अपनी भूमिका निभाना आरंभ कर दिया था।

इनकी अद्वितीय प्रतिभा के कारण ही 29 वर्ष की अल्प आयु में देश में सबसे कम उम्र में चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ में (1969-72) प्राध्यापक, डीन एवं विभागाध्यक्ष के रूप में इन्होंने सेवाएं प्रदान की। यहां इन्होंने साइटोजेनेटिक्स एवं बायोमिट्रिकल जेनेटिक्स के रूप में अपने ज्ञान से छात्रों को शिक्षित किया।

तत्पश्चात (1972-79) में डॉ. सिंह ने प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय का नेतृत्व किया। वे वर्ष 1977 से 1979 तक डीन, कृषि संकाय भी रहे। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में इनके कार्यकाल में अनेक अद्भुत कार्य हुए। इनके ही कार्यकाल में गेहूं, मक्का, धान, दलहन एवं तिलहन फसलों की अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना की शुरुआत हुई, जिसका इन्होंने सफलतापूर्वक संचालन किया। इनके ही कार्यकाल में गेहूं की एच.यू. डब्ल्यू.12, एच.यू.डब्ल्यू.37, एच.यू.डब्ल्यू.55 एवं एच.यू.डब्ल्यू.234 जैसी अच्छी किस्मों का विकास हुआ।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नेतृत्व देने व नीतियों के निर्धारण में भी डॉ. सिंह की अग्रणी भूमिका रही है। साथ ही वे विश्व खाद्य संगठन के एशिया एवं प्रशांत क्षेत्र के अंतर्गत आई.बी.पी.जी.आर. के क्षेत्रीय समन्वयक के रूप में अपनी भूमिका निभाते रहे। सन् 1982-91 तक इन्होंने विश्व खाद्य संगठन के अंतर्गत क्षेत्रीय पादप उत्पादन एवं संरक्षण अधिकारी, बैंकॉक में अपनी सेवा दी। सन

1991-94 तक अनुसंधान एवं तकनीकी विकास विभाग, खाद्य एवं कृषि संगठन, रोम में वरिष्ठ अधिकारी के रूप में भी कार्य किया।

खाद्य एवं कृषि संगठन में अपनी विशिष्ट सेवा समाप्ति के बाद डॉ. सिंह ने फिर से देश में सेवा देने का मन बनाया एवं भारत में कृषि क्षेत्र के अग्रणी संस्थान भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के निदेशक के रूप में कार्यभार संभाला। उन्होंने अपने कार्यकाल में अनुसंधान, प्रसार, किसान एवं बाजार के बीच समन्वय स्थापित करने की दिशा में विशेष कार्य किया। साथ ही द्वितीय हरित क्रांति की रूप रेखा तैयार की। वर्ष 1996 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान का विजन 2020 भी इन्हीं के नेतृत्व में तैयार हुआ। फलस्वरूप वर्ष 1996 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, भारतीय कृषि अनुसंस्थान परिषद द्वारा दिया जाने वाला सर्वश्रेष्ठ संस्थान का पुरस्कार पाने वाला प्रथम संस्थान बना, जो इनके कुशल नेतृत्व का परिचायक है।

केंद्रीय कृषि मंत्री, श्री चतुरानन मिश्र जी से सर्वश्रेष्ठ संस्थान का पुरस्कार प्राप्त करते हुए, प्रो. आर.बी. सिंह

वर्ष 1996 में 'राष्ट्रीय फाइट्रोटोन सुविधा' एवं इंडो-इज़राइल परियोजना जापानी सरकार के सहयोग से अत्याधुनिक सुविधायुक्त बीज प्रसंस्करण संयत्र एवं निम्नताप बीज भंड़ारण सुविधा, करनाल भी भा.कृ.अनु.सं. को मिला, जो डॉ. सिंह की दूरदर्शिता एवं नेतृत्व क्षमता की मिसाल है। डॉ. सिंह ने अपने निदेशक के कार्यकाल के दौरान ही वर्ष (1999-2000) तक कृषि वैज्ञानिक चयन मंडल का भी नेतृत्व किया।

वर्ष 2000-2002 तक फिर से इन्होंने अतिरिक्त महानिदेशक, खाद्य एवं कृषि संगठन, रोम एवं क्षेत्रीय प्रतिनिधि एशिया एवं प्रशांत के रूप में कार्य किया, जहां इन्होंने 38 देशों का नेतृत्व किया। इनके इस अंतराष्ट्रीय दायित्व के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री (स्वर्गीय) श्री अटल बिहारी वाजपेयी का भी इन्हें आशीर्वाद एवं शुभकामनाएं मिलीं, साथ ही डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन के नेतृत्व में बने भारतीय किसान आयोग के सदस्य के रूप में भी इन्होंने (2002-04) तक कार्य किया। जहां इन्होंने किसानों की आय बढ़ाने के लिए विख्यात 'C2+50%' अर्थात किसानों की आय उनकी लागत के डेढ़ गुणी कैसे हो, के लिए सूत्र सुझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यदि प्रतिष्ठित पुरस्कारों की बात की जाए तो इनका जीवन ही कृषि क्षेत्र के लिए एक पुरस्कार के समान है। फिर भी कुछ प्रमुख निम्नलिखित पुरस्कार जिससे डॉ. सिंह नवाजे गए, उनका उल्लेख करना जरूरी है। कृषि एवं सामाजिक क्षेत्र कार्य की पहचान करते हुए वर्ष 2003 में तृतीय बड़े नागरिक सम्मान पद्म भूषण से इन्हें महामहिम राष्ट्रपति द्वारा नवाजा गया।

1984-आईबीपीजीआर स्वर्ण पदक

1987-लाल बहादुर शास्त्री स्मारक पदक

1989-फेलो, एनएएसटी

1990-फेलो, आईएसजीपीबी

1994-फेलो, नास

1997-99-प्रेसिडेंट आईएसजीपीबी

2004-06-सदस्य राष्ट्रीय किसान आयोग

2006-भारतीय परंपरागत विज्ञान पुरस्कार

2007- डॉ. ज़हु शौमीन इंटरनेशनल कॉलेज ऑफ न्यूट्रिशन अवार्ड

2012-18-चान्सलर, सीएयू इम्फ़ाल

2013-डिस्टिंनगुइश्ड अलुमिनस अवार्ड, एनसीएसयू यूएसए

2015-कृषि शिरोमणि एवं लाइफ टाइम अचीवमेंट अवार्ड द्वारा महिंद्रा एंड महिंद्रा

2011-13-प्रेसिडेंट नास

2015-डॉ. ए.बी. जोशी मेमोरियल अवार्ड द्वारा नास

इसके साथ-साथ भारत के 8 प्रमुख विश्वविद्यालयों द्वारा भी इन्हें डीएससी (ऑनर्स कोर्स) से भी सम्मानित किया है। डॉ. सिंह के विगत पांच दशकों के अनेक योगदान को अगर संक्षेप में कहा जाए तो शिक्षाविद, कृषि क्षेत्र के ज्ञाता एवं अनुसंधान और विकास के नेतृत्वकर्ता के रूप में इन्होंने 45 से ज्यादा पीएचडी छात्रों का मार्गदर्शन, 300 से ज्यादा अनुसंधान एवं नीतिगत लेख एवं 12 से ज्यादा राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय महत्व की पुस्तकें लिखीं। जिनमें निम्नलिखित प्रमुख है।

1. साइंस एंड टेक्नोलॉजी फॉर सस्टेनेबल फूड सिक्योरिटी, न्यूट्रिशनल एडीक्वेसी एंड पावर्टी एलीवियेशन: इन दि एशिया-पेसिफिक रीजन
2. रुरल एशिया-पैसिफिक इंटर- डिसिप्लिनरी स्ट्रैटेजिज टू कोम्बेट हंगर एंड पॉवर्टी (राइस बेस्ड लाइवलीहुड सपोर्ट सिस्टम)
3. स्माल होल्डर फार्मर्स ऑफ इंडिया: फूड सिक्योरिटी एंड एग्रिकल्चरल पॉलिसी
4. टूवर्ड्स एन एवरग्रीन रेवोलुशन दि रोड मैप
5. 100 इयर्स ऑफ एग्रिकल्चरल साइन्स इन इंडिया
6. एग्रिकल्चरल ट्रॉन्सफ़ोरमेशन - ए रोड मैप टू न्यू इंडिया

खाद्य एवं कृषि संगठन के अपने कार्यकाल में जहां विकासशील देशों में मानव संसाधन विकास एवं अनुसंधान के विकास के जरिए मुख्य फसल प्रणालियों में उत्पाद एवं उत्पादन की क्षमता के स्थायित्व एवं सुधार के लिए डॉ. सिंह हमेशा जाने जाएंगे। वहीं राष्ट्रीय स्तर पर उपयुक्त रणनीति, नीति एवं कार्यक्रम के जरिए अपने सुझावों से भूख और गरीबी को कम करने एवं आमदनी बढ़ाने में डॉ. सिंह ने सरकार एवं देश की हमेशा मदद की। वे विज्ञान आधारित नीतियों के विकल्प के जरिए स्तर विकास के लक्ष्यों को पूरा करने में अपने विचारों से देश और समाज को जागरूक करते रहते हैं। डॉ. सिंह का जीवन हम सब के लिए आज प्रेरणा स्त्रोत है और आगे भी रहेगा।

* डॉ. अशोक कुमार सिंह, निदेशक, भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली।

अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच-सींच कर महाप्राण शक्तियां बनाते हैं।

- महर्षि अरविंद

विदेशी सब्जियों की वैज्ञानिक खेती

गोगराज सिंह जाट, जोगेन्द्र सिंह, सचिन कुमार एवं बी.एस. तोमर

शाकीय विज्ञान संभाग

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

ब्रोकोली, रेड कैबेज एवं सलाद रबी मौसम में उगाई जाने वाली प्रमुख विदेशी सब्जी की फसलें है। ब्रोकोली विटामिन-ए, विटामिन-सी और खनिज लवण जैसे कैल्सियम, पोटैशियम, फॉस्फोरस तथा आयरन का अच्छा स्त्रोत है। रेड कैबेज में खनिज लवण, विटामिन-ए तथा पोटैशियम की मात्रा सामान्य पत्ता गोभी की तुलना में ज्यादा होती है, इसका उपयोग सलाद, सलाद की सजावट तथा मंचूरियन गोभी के रूप में किया जाता है। ब्रोकोली एवं रेड कैबेज कैंसर, आघात और हृदय रोगों के जोखिम को कम करने के साथ-साथ रक्तचाप को सामान्य बनाए रखने और रक्त कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में भी सहायक होती है। सलाद एक लोकप्रिय पत्तेदार सब्जी है। इसकी पत्तियों में विटामिन-ए, विटामिन-सी, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और बहुत से खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में होते हैं। यह बर्गर में प्रचुर मात्रा में इस्तेमाल होता है।

तापमान की आवश्यकता:

ब्रोकोली की अच्छी वृद्धि के लिए औसत तापक्रम 18-23° से. उपयुक्त माना जाता है। रेड कैबेज के सफल उत्पादन के लिए 15-20° से. तापमान की आवश्यकता होती है। तापमान 25° से. ज्यादा होने पर इसकी वृद्धि दर कम हो जाती है। सलाद की वृद्धि के लिए औसत तापक्रम 12-20° से. उपयुक्त होता है। तापमान 27° से. से अधिक होने पर सलाद में शीर्ष बनने की प्रक्रिया तथा पौधे की गुणवता प्रभावित होती है।

खेत का चयन एवं तैयारी:

वैसे तो इन फसलों को विभिन्न प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है परंतु सफल उत्पादन के लिए रेतीली-दोमट मृदा जिसका पी.एच. मान 6.0 से 6.5 तथा उच्च कार्बनिक पदार्थ युक्त एवं उपजाऊ होनी चाहिए। उच्च कार्बनिक पदार्थयुक्त खेत उत्पादन के साथ-साथ उत्पाद की गुणवता बढ़ाने में भी सहायक रहता है। अच्छी प्रकार से सड़ी हुई 20-25 टन गोबर की खाद खेत की तैयारी से 25-30 दिन पहले खेत में डालनी चाहिए। मृदा में किसी भी पोषक तत्व की कमी को जानने के लिए मिट्टी परीक्षण कराएं तथा जांच के अनुसार सूक्ष्म तत्वों का इस्तेमाल करें।

उन्नत किस्में:

ब्रोकोली की प्रमुख उगाई जाने वाली किस्में जैसे पूसा ब्रोकोली के. टी. ऐस-1, पालम समृद्धि, पालम कंचन तथा पालम विचित्रा है। रेड कैबेज की प्रमुख किस्में रेड कैबेज तथा रेड ड्रमहेड कैबेज है। सलाद की भारत में उगाई जाने वाली प्रमुख किस्में ग्रेट लेक्स, चाइनी येलो तथा आइसबर्ग है। इनके अतिरिक ब्रोकोली एवं रेड कैबेज में संकर किस्में भी उपलब्ध हैं जिनका खेती के लिए चयन किया जा सकता है।

बीज दर एवं पौध तैयार करना:

ब्रोकोली के लिए 400-500 ग्राम, रेड कैबेज के लिए 600-700 ग्राम तथा सलाद के लिए 500 ग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहता है। इन फसलों की पौध तैयार करने के लिए पौधशाला में बीज की बुवाई मध्य सिंतबर-अक्तूबर के दौरान कर सकते हैं। बीज उपचार फफूंदनाशक दवा (थीरम या कैप्टान) 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम के हिसाब से करें। पौधशाला में पौध उठी हुई क्यारियों पर तैयार करना चाहिए। इन क्यारियों की लंबाई कम से कम 3 मीटर व चौड़ाई 0.6 मीटर रखनी चाहिए। बीजों की बुवाई पंक्तियों में करें तथा बुवाई की गहराई 1.5-2.0 से. मी. रखें। बीजों को बोने के बाद गोबर की खाद व मिट्टी

के मिश्रण से ढक कर हजारे की सहायता से हल्की सिंचाई करनी चाहिए। यदि संभव हो तो क्यारियों को पुवाल या सूखी घांस से जमाव आने तक ढक देना चाहिए जिससे क्यारियों में नमी बनी रहती है तथा बीजों का एक समान जमाव होता है। रेड कैबेज तथा ब्रोकोली में पौध 28-30 दिन तथा सलाद में 35-38 दिन में रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

खाद एवं उर्वरक:

खाद व उर्वरकों का प्रयोग करने से पहले निकटतम कृषि विज्ञान केंद्र या जिला कृषि विभाग की मृदा प्रयोगशाला से मिट्टी की जांच करवा लेनी चाहिए। मिट्टी की जांच के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। बुवाई पूर्व लगभग 20-25 टन प्रति हेक्टेयर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग इन फसलों के लिए करना चाहिए। कच्ची गोबर की खाद का प्रयोग ना करें ये दीमक को आमंत्रित करती है। रासायनिक खाद का प्रयोग अनुशंसा के अनुसार तथा नाइट्रोजन की मात्रा 100 किलोग्राम, फॉस्फोरस की 60 किलोग्राम तथा पोटैशियम 50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर के हिसाब से करनी चाहिए।

फसल अंतरण

ब्रोकोली की फसल में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सेमी. रखनी चाहिए। रेड कैबेज के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सेमी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30-45 से.मी. रखनी चाहिए तथा सलाद के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30-45 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 20-30 सेमी. रखनी चाहिए।

सिचाई:

सामान्यतः इन फसलों में 10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। बूंद-बूंद सिंचाई विधि भी इन फसलों में इस्तेमाल में लाई जा सकती है जिससे पानी की बचत 30-40 प्रतिशत तक होती है व पानी में घुलनशील उर्वरक (एन. पी. के. 19:19:19) भी सिंचाई के साथ दिए जा सकते हैं।

खरपतवार नियंत्रण:

ब्रोकोली, रेड कैबेज एवं सलाद की अच्छी बढ़वार के लिए प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण अत्यधिक आवश्यक है क्योंकि फसल की अच्छी बढ़वार की अवस्था में खरपतवार कम हो जाते हैं। खरपतवार इन फसलों से पानी, प्रकाश एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतियोगिता करते हैं तथा कीट व बीमारियों को शरण देते है जिससे फसलों की उपज को 20-80 प्रतिशत तक कम कर देते है। ये खरपतवार फसलों में शुरुआती 4-6 सप्ताह तक अधिक नुकसान करते हैं । पहली दो सिंचाई के बाद में हल्की निराई गुड़ाई करनी चाहिए। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए पेन्डीमिथेलीन (30 ई.सी.) 400 मिली की मात्रा प्रति एकड़ को 200 ली. पानी में रोपाई से पहले छिड़काव करें।

कटाई एवं उपज:

ब्रोकोली में जब हेड सामान्य आकार का हो जाए तब तुड़ाई कर लेनी चाहिए। रेड कैबेज में जब हेड सामान्य आकार का व ठोस हो जाए (हाथ से छूने पर मजबूत व कठोर लगे) परंतु दरारे पड़ने व फटन शुरू होने से पहले इसकी तुड़ाई कर लेनी चाहिए। सामान्यतया रोपाई के 60-65 दिन बाद हेड तैयार होने आरंभ हो जाते हैं। सलाद की कटाई जब पत्तियां आवश्यक आकार की हो जाए तब की जानी चाहिए। मुख्यतः इन फसलों की उपज किस्मों, उगाए गए मौसम, प्रबंधन क्रियाएं आदि पर निर्भर करती है। अगर इन किस्मों की बुवाई समय पर की गई हो व कीट एवं बीमारियों का प्रबंधन अच्छे से किया गया हो, तो रेड कैबेज से 20-25 टन, ब्रोकली से 15-20 टन, सलाद से 8-12 टन प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है।

प्रमुख कीट व बीमारियां एवं उनका नियंत्रण:

इन फसलों में कीटों व बीमारियों का प्रकोप कम होता है परंतु खेत फसल में साफ सफाई रखनी चाहिए, जिससे रेड कैबेज के प्रमुख कीटों जैसे डायमंड बैक मोथ व माहू का प्रकोप कम से कम हो। अगर इस प्रकार के कीटों के लार्वा खेत में दिखाई दें तो तुरंत पौधों की पत्तियों को तोड़कर उनको नष्ट कर देना चाहिए। खेत के एक किनारे

में गहरा गड्डा खोदकर उनको दबा देना चाहिए। अगर इस प्रकार के कीटों का प्रकोप अधिक हो तो कीटनाशक जैसे स्पाईनोसेड 50 मि. ली. प्रति एकड़ का फसलों में छिड़काव किया जा सकता है अगर किसी खेत में पहले वर्ष में ब्रोकोली, रेड कैबेज एवं सलाद उगाई गई हो, तो उस खेत में अगले वर्ष में इन सभी फसलों की खेती नहीं करनी चाहिए क्योंकि पुरानी फसल के अवशेष विभिन्न प्रकार के कीटों को शरण देते हैं। मृदुल आसिता तथा सलाद मोजेक वायरस, सलाद की एक प्रमुख बीमारी है। मृदुल आसिता से पत्तियों की निचली सतह पर भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। इस बीमारी की रोकथाम के लिए डायथेन एम-45, 2.5 ग्रा. अथवा रिडोमिल 1 ग्रा. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। सलाद मोजेक वायरस के नियंत्रण के लिए रोगमुक्त बीज तथा रोग-प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए।

भंडारण:

ब्रोकोली, रेड कैबेज एवं सलाद की गुणवता को बनाएं रखने के लिए इसका भंडारण रेफ्रीजिरेटर में 4-6° सेल्सियस पर करना चाहिए जिससे श्वसन की क्रिया कम हो जाती है और विटामिन-सी की मात्रा भी बनी रहती है, जिससे लंबे समय तक बिना नुकसान के सुरक्षित रखा जा सकता है। इनको और अधिक लंबे समये तक सुरक्षित रखने के लिए प्लास्टिक में लपेटकर भी रखा जा सकता है जिससे श्वसन क्रिया लगभग रुक जाती है तथा ये मोल्ड की वृद्धि को रोक देता है व इसको सड़ने से बचाता है।

सलाद फसल की कतारों में रोपाई

रेड कैबेज की फसल बडवार की अवस्था में

ब्रोकोली फसल के खेत का दृश्य

परंपरागत खेती से व्यावसायिक खेती में बदलाव कर किसान आमदनी बढ़ाए

रमेश चंद हरित[1], योगेश कुमार[1], श्रवण कुमार सिंह[2] एवं सूरा नरेश कुमार[1]

[1]पर्यावरण विज्ञान एवं जलवायु समुत्थानशील कृषि केंद्र [2]सब्जी विज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

विश्व में भारत एक प्रमुख उत्पादक और निर्यातक देश है, दुनिया के मसालें के व्यापार में लगभग 20-25% का योगदान रहता है और विश्व पटल पर भारत को "मसालें की भूमि" के नाम से भी जानते हैं। इसके अलावा, हमारे देश में मसालों का बड़ी मात्रा में मौसमी फलों एवं खाने में खुशबू के लिए उत्पादन किया जाता है। विश्व के अंतरराष्ट्रीय संगठन के मानकीकरण के द्वारा मान्यता प्राप्त 109 मसालों में 60 से अधिक मसालें भारत में उगाए जाते है। भारत को आशीर्वाद है कि विविध प्रकार की कृषि-जलवायु परिस्थिति में सभी प्रकार के मसालें उगाए जा सकते हैं भारतीय मसालों कि उच्च गुणवता के साथ ही उतम तैलीय तत्व होने के कारण विश्व में भारी मांग रहती है। अधिकतर मसालें खाने में खुशबू के साथ-साथ औषधि के रूप में भी लाभकारी होते है। कुछ मसालें बेकरी उत्पाद एवं मिठाइयां में सुगंध और मसालेंदार(चटपटा) बनाने के काम आते है। मसालें की खेती करने से अच्छी आय के साधन बन जाते हैं। इनकी फसलों के विशिष्ट गुण विभिन्न फसल चक्रों के अनुकूल भी हो सकते है। इन मसालों का असामयिक बीमारियों/महामारियों में काढ़े के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इनमें से कुछ मसालें रसोई में दैनिक रूप से सब्जियों में खुशबू या फिर चटनी के लिए भी उपयोग करते हैं। इन मसालों में भी दैनिक उपयोग वाले सुगंधित एवं पाचन क्रिया में सहायक धनिया और पुदीना की खेती विशेष महत्व रखती है और आजकल किसानों का रुझान इनकी खेती की ओर बढ़ रहा है।

धनिया एक वार्षिक फसल का पौधा है। इसके पत्ती, तने और बीजों का प्रयोग अलग-अलग पकवानों को सजाने और स्वादिष्ट बनाने के लिए किया जाता है। इसके पत्तों मे विटामिन सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसका प्रयोग छोटी-मोटी बीमारियों में घरेलू नुस्खे के तौर पर भी किया जाता है। धनिया एक बहुमूल्य, बहुपयोगी मसालें वाली खुशबू/महक, औषधि और आर्थिक दृष्टि से भी लाभकारी है। धनिये की पत्तियां खाने को सुगंधित और भोजन को स्वादिष्ट बनाने इस के बीज मसालें के रूप में काम आता है। भारत धनिये का मुख्य उत्पादक एवं निर्यातक देश है। इसके अलावा विदेशों में इसके तेल से चॉकलेट, कैंडी, सीलबंद भोज्यपदार्थ, सूप और मदिरा को सुगंधित करने में भी उपयोग होता है। इसकी खेती करना भी आसान होता है। धनिया एक बहुउपयोगी फसल है जिसकी पत्ती और मसालें दोनों से मुनाफा ले सकते हैं क्योंकि देशभर में धनिये की मांग वर्ष भर बराबर बनी रहती है, इस की खेती के लिए विशेष जलवायु की आवश्यकता नहीं होती, इसलिए इसकी खेती हमारे देश के लगभग हर प्रदेश में की जाती है। इसकी सबसे अधिक पैदावार और खपत भारत में ही होती है। भारत में इसकी सबसे ज्यादा खेती राजस्थान और मध्य प्रदेश में की जाती है। भारत में इसकी खेती मुख्यत: उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, बिहार, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक में अधिकतर की जाती है। मध्य प्रदेश में लगभग 1 लाख हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रफल में खेती होती है और इसके बीज की औसत उपज

4 क्विंटल प्रति हेक्टेयर से अधिक है। इस के उत्पादन का एक बड़ा भाग मलेशिया, जापान, श्रीलंका, सिंगापुर, ब्रिटेन और अमेरिका को निर्यात किया जाता है जिससे देश की विदेशी मुद्रा में बढ़ोतरी होती है।

धनिये के साथ-साथ पुदीने की मांग भी हमारे देश में बराबर बनी रहती है। इसकी चटनी बहुत ही स्वादिष्ट होती है और यह लगभग सभी पकवानों के साथ परोसी जाती है। इससे पकवान का स्वाद दोगुना और यह पचाने में सहायक होती है। पुदीना सुगंधित और हरा रहने वाली फसल (बेल/ पौधा) है। पुदीने की फसल महज चार महीने में तैयार हो जाती है। सुगंधित होने के कारण इस पर कीट-पतंगो का भी कोई विशेष असर नहीं होता है और इस कारण से जानवर भी इससे दूर ही रहते हैं। इसके पत्ते सौंदर्य प्रसाधन, आयुर्वेदिक और हर्बल दवाई बनाने में प्रयोग किए जाते हैं। यह एक जमीन पर फैलकर बढ़ने वाली जड़ रूपी पौधा होता है। इसका मूल स्थान मैडीटेरेनियन बेसिन को माना जाता है। यह अधिकतर अंगोला, थाईलैंड, चीन, अर्जेन्टीना, ब्राज़ील, जापान, भारत और परागुए में इसकी खेती की जाती है। भारत में उतरप्रदेश और पंजाब इसके प्रमुख उत्पादक प्रदेश हैं। पुदीने को विश्व में मिंट के नाम से जाना जाता है और इसकी कई प्रकार की प्रजातियां जैसे जापानी मिंट, पिपरमिंट, स्प्रियमिंट और बर्गामोट मिंट की खेती इनके तेल और सुगंध के अनुसार व्यापक स्तर पर की जा रही है। आजकल इसका ताजा उपयोग करने के लिए लोग किचन गार्डन या गमलों में भी उगाने लगे हैं। विश्व में पुदीना के उत्पादन में चीन प्रथम तथा भारत द्वितीय स्थान पर है। पिपर मिंट और स्पियर मिंट उत्पादन में पहले स्थान प्राप्त है। क्योंकि परंपरागत खेती उचित लाभकारी नहीं होने के कारण किसानों का ध्यान व्यावसायिक खेती की ओर बढ़ रहा है। इसमें धनिया और पुदीना की खेती विशेष स्थान रखती है क्योंकि ये फसलें नकदी के साथ-साथ व्यावसायिक आमदनी का एक अच्छा स्रोत है और यह छोटे और मझोले किसानों के लिए भी फायदेमंद साबित हो सकती है।

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के पर्यावरण विज्ञान एवं जलवायु समुत्थानशील कृषि केंद्र के प्रयोगात्मक प्रक्षेत्र पर वर्ष 2018-19 तथा 2019-20 में धनिये की फसल हरी पत्ती उत्पादन और हरी पत्ती कटाई के बाद मसालें दाने उत्पादन के लिए लगाई गई तथा पुदीने की फसल भी हरी पत्ती उत्पादन के बुवाई की गई और इस क्षेत्र में इन दोनों फसलों के प्रदर्शन का आकलन किया गया। इसके साथ ही इन दोनों फसलों पर तापमान के प्रभाव का भी आकलन किया गया। विस्तृत खेती की जानकारी इस प्रकार है-

धनिया की फसल बोने की वैज्ञानिक विधि

धनिये की पत्ती उत्पादन के लिए

धनिये की पत्ती कटाई के उपरांत दाने के लिए

धनिये की फसल रबी के मौसम में बोई जाती है परंतु अच्छे दाम लेने के लिए किसान इसकी खेती अब लगभग हर मौसम में करने लगे हैं। इसकी खेती सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है परंतु उत्तम उत्पादन के लिए इसकी खेती के लिए अच्छे जल निकास वाली दोमट भूमि उपयुक्त मानी जाती है। खेत की मिट्टी को भुरभूरा कर और 10-20 टन गोबर/कंपोस्ट की सड़ी खाद खेत में

डाले। धनिये की खेती के लिए मध्य अक्तूबर से मध्य नवंबर के दरम्यान इसकी बुवाई करनी चाहिए। दाने के लिए इसकी बुवाई नवंबर के पहले पखवाड़े में कर देनी चाहिए। इसकी बुवाई पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे 30 X 15 से. मी. पर 2-3 से. मी. की गहराई पर बुवाई कर दें। प्रजातियों का चयन अपने क्षेत्र के पत्ती/ दाने उत्पादन के हिसाब से करना चाहिए। सिंचित और असिंचित अवस्था में 15 से 30 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। बीज को बोने से पहले 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति किलो के हिसाब से बीजोपचार कर 10-12 घंटे भिगो कर रखना चाहिए। खाद के लिए नाइट्रोजन 40 कि./हेक्टेयर, फॉस्फोरस 40 कि./हेक्टेयर और पोटाश 20 कि./हेक्टेयर के हिसाब से डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की दूसरी और तीसरी मात्रा प्रत्येक कटाई के बाद पानी लगाने पर डाल देनी चाहिए। मसालें/दाने के लिए फूल आने पर नाइट्रोजन 30 कि./हेक्टेयर डालनी चाहिए। पहली हल्की सिंचाई बुवाई के तुरंत बाद कर देनी चाहिए, इसके बाद कटाई के 2-5 दिन बाद सिंचाई करते रहना चाहिए। खरपतवार के लिए फसल के शुरुआत में आवश्यकतानुसार 1-2 निराई करनी पड़ती है फसल बड़ी होने पर इसकी भी जरूरत नहीं रहती। धनिये की फसल सुगंधित होने से इस में कीड़े या रोग कम लगते हैं इसलिए फसल के लिए कोई विशेष दवाई की जरूरत नहीं पड़ती है।

सीधे दाने की उपज के लिए धनिया की खेती

सामान्यत: फसल की कटाई उपयुक्त समय पर करनी चाहिए, जब धनिये का दाना कठोर, चमकीला पीला या भूरा होने लगे तो इसकी कटाई कर लेनी चाहिए। कटाई के बाद छोटे-छोटे बंडल बनाकर 1-2 दिन खेत की धूप में इसके बाद दाने का रंग और सुगंध सुरक्षित रखने के लिए इन्हें छाया में सुखाना चाहिए।

सीधे दाने की उपज के लिए धनिये की फसल

धनिये की पैदावार किस्म, क्षेत्र, मौसम और प्रबंधन आदि पर निर्भर करती है। परंतु उन्नत खेती करने उपयुक्त सिंचाई करने से 80 से 150 क्विंटल/हेक्टेयर पत्ती और 5 से 7 क्विंटल/ हे दाने का उत्पादन होता है और केवल मसालें के दाने की उपज 10-12 क्विंटल/ हेक्टेयर हो सकती है।

पुदीना की फसल बोने की वैज्ञानिक विधि

पुदीने की बुवाई की शुरुआत के विकास से पत्ती उत्पादन तक

पुदीने की फसल रबी के मौसम में उगाई जाती है परंतु कुछ क्षेत्रों में शरद ऋतु के अंतिम पखवाड़े (जनवरी के अंत से फरवरी के मध्य में भी बुवाई) की जाती है। जम्मू में स्थित अनुसंधान प्रयोगशाला में मेंथा उत्पादन पर शोध किया गया था। वर्ष 1996 में इसका उत्पादन 6000 टन प्रतिवर्ष था जो साल 2015 में सवा लाख टन के आंकड़े को पार कर चुका है। पुदीने की खेती सभी प्रकार की मृदा में की जा सकती है। परंतु अच्छे उत्पादन के लिए बेहतर जल सोखने की क्षमता व उचित नमी वाली मृदा उपयुक्त होती है, लेकिन इसकी खेती जल

जमाव वाली मृदा में भी की जा सकती है। पुदीने की खेती के लिए हैरो से गहरी एवं उथली जुताई करके उसमें से खरपतवार और जड़ के ठुंठो को निकाल कर समतल कर लेना चाहिए। इसकी खेती के लिए 10 से 12 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर की दर से डालनी चाहिए। इसकी बुवाई सीधे खेत में बुवाई करने के लिए दिसंबर का प्रथम सप्ताह - जनवरी के अंत तक का समय उपयुक्त रहता है। इसकी बुवाई के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सेंटीमीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 40 से 50 सेंटीमीटर और 2 से 5 सेंटी मीटर पर नए भाग लगाने चाहिए। पुदीने की बुवाई के लिए जड़ के भाग से फुटाव या टहनियों से नई आंख/कोपलों के निकालने वाले भाग की बुवाई की जाती है। ये जड़ या टहनी के भाग दिसंबर-जनवरी के महीने में प्राप्त की जाती है। इसके लिए 200-300 किलो ग्राम अंकुरित जड़ के भाग/ आंख/ सकर्स प्रति हेक्टेयर बुवाई के लिए उपयुक्त रहता है। सीधे खेत में बुवाई करने से कभी-कभी सभी जड़ के भागों में फुटाव नहीं हो पाता है तो खेत खाली रह जाता है। अधिक उत्पादन लेने के लिए इसकी नर्सरी बना कर भी रोपाई की जाती है। नर्सरी बनाने के लिए उचित सिंचाई की सुविधा वाली जगह का चुनाव करना चाहिए। सबसे पहले सुविधानुसार एवं आवशयकतानुसार क्यारियां बना लें और इन क्यारियों को खेत से 20 से 30 सेंटी मीटर ऊंचा रखना चाहिए ताकि इनमे पानी इक्कट्ठा होने पर पानी का निकास किया जा सके। इन क्यारियों में से खरपतवार की जड़ें निकाल कर मिट्टी भुरभुरी बना लें और सड़ी गोबर की खाद अच्छी तरह से मिला कर जड़ों की बुवाई या बिखेर कर के पानी से भर दें। यदि आप चाहें तो इन जड़ों को कार्बोडिज़्म के 2 प्रतिशत के घोल से उपचारित कर सकते हैं। जड़ में कम से कम एक आंख का फुटाव होना जरूरी है और फिर इन जड़ों में आंख का फुटाव होने पर खेत में रोपाई कर देते हैं। इसकी रोपाई ऊपर दिए गए अंतराल पर ही हाथ या मशीन के द्वारा कर देनी चाहिए। बुवाई करने के तुरंत बाद हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। सामान्य तौर पर 150 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40 किलोग्राम फॉस्फोरस तथा 60 किलो ग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से डालनी चाहिए, इसमें से नाइट्रोजन की 25% मात्रा एवं फॉस्फोरस और पोटाश की 100% मात्रा खेत की तैयारी बुवाई से पहले ही कर देनी चाहिए। बची हुई नाइट्रोजन की मात्रा बराबर हिस्से करके प्रत्येक कटाई के बाद डालनी चाहिए। खेत में उचित नमी बनाए रखने के लिए हल्की सिंचाई सर्दियों में 10 से 20 दिन के अंतराल पर और गर्मियों में 8 से 10 दिन के अंतराल पर करते रहना चाहिए। फूल आने तक आखिरी कटाई कर सकते हैं। सिंचाई की उचित सुविधा नहीं होने से इसका उत्पादन घट सकता है।

उरोक्त दोनों फसलों के सुगंधित होने के कारण इन फसलों में कीड़े - मकोड़े और बीमारी भी बहुत कम लगने के कारण दवाई की बहुत कम जरूरत पड़ती है। इनकी खुशबू के कारण इन्हें जंगली जानवर भी कम नुकसान पहुंचाते हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के प्रयोगात्मक प्रक्षेत्र में उच्च तापमान के लिए टनल में धनिया और पुदीने की फसल

टनल के अंदर धनिये और पुदीने की फसल

टनल के अंदर पुदीने की फसल

रबी के मौसम में टनल के अंदर(नियंत्रित वातावरण) में धनिये की फसल की पत्ती उत्पादन अधिक रहता है जबकि बाहर (खुले वातावरण) में लगी फसल की फसल की बढ़वार टनल की अपेक्षा कम बढ़वार होती है क्योंकि बाहर के मौसम में ठंड अधिक होने और रात का तापमान अधिक गिरने से फसल की वृद्धि तुलनात्मक हल्की रहती है परंतु टनल के अंदर तापमान कुछ ज्यादा होने से फसल की शुरुआत में वृद्धि अच्छी होती है, इसलिए बाहर खुले वातावरण की फसल की तुलना में टनल के अंदर उचित तापमान होने से पत्तियों की वृद्धि अधिक होने के कारण हरी पत्ती का उत्पादन अधिक होता है, जबकि बाहर की फसल की अपेक्षा टनल के अंदर की फसल में कम बीज बनता है। धनिये की फसल में बाहर (प्राकृतिक दशा में) खेती करने की अपेक्षा टनल के अंदर (उच्च तापमान) में खेती करने से ताजी पत्तियों का उत्पादन रात के उच्च तापमान में बढ़ता है परंतु बीज का उत्पादन घटता है। किसान इसकी खेती की अगेती और देरी से बुवाई करके तथा आवश्यकतानुसार प्रबंधन में उचित बदलाव करके अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं। क्योंकि गर्मियों में इसकी खेती के समय में सिंचाई की उचित व्यवस्था करके इसके दाम से ज्यादा मुनाफा ले सकते है।

दिसंबर - जनवरी के मौसम में पुदीने की फसल बाहर (प्राकृतिक परिस्थिति) की फसल के अपेक्षा टनल के अंदर पुदीने की बुवाई करने पर टनल के अंदर फसल की बढ़वार अधिक होती है क्योंकि इस मौसम में खुली जगह का तापमान कम होने के कारण ठंड अधिक रहती है और रात का तापमान गिरने से ठंड और बढ़ती है इसलिए फसल की वृद्धि तुलनात्मक हल्की रहती है परंतु टनल के अंदर तापमान कुछ अधिक होने से रात के तापमान में भी कम गिरावट होने के कारण फसल की शुरुआत में वृद्धि अधिक होती है, इसलिए बाहर खुले वातावरण की फसल की तुलना में टनल के अंदर उचित तापमान होने से ताजी पत्तियों में अधिक वृद्धि होने के कारण हरी पत्ती उत्पादन बढ़ता है, जबकि बाहर की फसल, टनल के अंदर की फसल की अपेक्षा में कम उत्पादन रहता है। पुदीने की फसल में बाहर (खुले में) खेती करने की अपेक्षा टनल के अंदर (उच्च तापमान) की फसल में हरी ताजी पत्तियों का उत्पादन उच्च तापमान में बढ़ता है। किसान इसकी बुवाई उचित समय पहले या बाद में करके इसके प्रबंधन में उचित बदलाव करके बाजार भाव से आमदनी बढ़ा सकते हैं। क्योंकि गर्मियों में इसकी खेती के समय में सिंचाई की उचित व्यवस्था करके सामान्य से ज्यादा मुनाफा लिया जा सकता है। दोनों फसलों की खेती करने में किसानों को कम जोखिम उठाना पड़ेगा और साथ ही इन दोनों फसलों को नकदी फसलें भी कह सकते है।

संदर्भ:-

- अनुग्रह तिवारी, अन्नदाता,फरवरी, 2020
- कंचन मौर्य, दिसंबर, 2019।
- शिव अवस्थी, कन्नौज, नवंबर, 2016
- शक्ति विनय शुक्ल, प्रधान निदेशक, एफएफडीसी
- पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना
- राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, भारत सरकार
- कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय

"सब कुछ प्रतीक्षा कर सकता है पर कृषि नहीं"

- प. जवाहर लाल नेहरू

नाशीकीट प्रबंधन में कीट फेरोमोन की उपयोगिता

सुरेश एम नेबापुरे, सागर डी एवं संजीव रंजन सिन्हा

कीट विज्ञान संभाग

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

सभी जीवों की भांति कीट भी पर्यावरण के अन्य घटकों पर परस्पर प्रभाव डालते हैं जिसमें वे रहते हैं। यह परस्पर प्रभाव 'अंतरजातीय' (इंटरस्पेसिफिक) अर्थात कीटों और अन्य प्रजातियों के बीच या 'अंतरंग' (इंट्रास्पेसिफिक), एक ही प्रजाति के जीवों के बीच होता है। ये परस्पर क्रियाएं कीटों और अन्य घटकों से उत्पन्न रसायनों के निश्चित समूह द्वारा नियंत्रित की जाती हैं जिन्हें आमतौर पर 'सेमीओकेमिकल्स' कहते हैं। इन सेमीओकेमिकल्स को दो प्रमुख प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है - फेरोमोन्स (इंट्रास्पेसिफिक) और एलेलोकेमिकल्स (इंटरस्पेसिफिक)। एललोकेमिकल्स में एलोमोन्स (उत्सर्जक प्रजाति को लाभ), काइरोमोन (प्रापक प्रजाति को लाभ) और सिनोमोन (दोनों प्रजातियों को लाभ) शामिल हैं। नाशी कीट प्रबंधन में मुख्य रूप से फेरोमोन का उपयोग अलग-अलग उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है जैसे- कीट निगरानी, कीट को अधिक समूह या बड़े पैमाने पर पकड़ने एवं नर और मादा कीट के लिए संभोग विघटन।

कीट प्रबंधन में ज्यादातर सेक्स फेरोमोन, अलार्म फेरोमोन और एकत्रीकरण फेरोमोन प्रयोग होते हैं। सेक्स फेरोमोन का प्रयोग ज्यादातर निगरानी के उद्देश्य से किया जाता है। अधिकांश कीटों की मादा फेरोमोन छोड़ती हैं जो संभोग के लिए एक ही प्रजाति के नर को आकर्षित करती हैं और इसलिए उन्हें सेक्स फेरोमोन कहा जाता है। मादा द्वारा छोड़ा गया फेरोमोन यौगिकों को व्यक्तिगत या संयोजन रूप में कृत्रिम तौर पर तैयार करके ल्यूर (प्रलोभन) बनाया जाता है और उसे उपयुक्त पाश के साथ संयोजित करके निगरानी या बड़े पैमाने पर कीटों को फंसाने के उद्देश्य से प्रयोग किया जाता है। जीवों में चेतावनी के संकेतों को फैलाने के लिए और रक्षा रणनीति या परिहार तंत्र को सक्रिय करने के लिए अलार्म फेरोमोन का उपयोग ज्यादातर सामाजिक कीटों जैसे चेंपा, मधु मक्खियों, चींटियों आदि के द्वारा किया जाता है। एकत्रीकरण फेरोमोन का उपयोग कीट द्वारा एक स्थान पर एकत्र होकर संभोग, भोजन या सीतनिद्रा (हाइबरनेशन) के लिए किया जाता है। ये आम तौर पर लंबी दूरी के लिए होते हैं और नर और मादा दोनों को फंसाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। मेथोक्सीबेंजीन (अनिसोल) एक ऐसा ही एकत्रीकरण फेरोमोन है जो गन्ने के भृंग (होलोट्रिचिया कोंसंगुईनेया) की उदर ग्रंथियों से निकलता है, वह दोनों लिंगों को 15 मीटर की दूरी से आकर्षित कर लेता है।

निगरानी हेतु फेरोमोन पाश :

इस दृष्टिकोण में किसी निश्चित क्षेत्र में कीट की उपस्थिति और घनत्व को फेरोमोन पाश की सहायता से देखा जाता है। पाश में फंसे कीटों की मात्रा के आधार पर संभावित कीट के प्रकोप का पूर्वानुमान संभव है। यह प्रबंधन रणनीतियों के लिए समय पर तैयारी में मदद करता है ताकि फसल के नुकसान को रोका जा सके। खेतों में कीटों की निगरानी के लिए कीट के व्यवहार के बारे में ज्ञान, उपयोग किए जाने वाले पाशों के प्रकार, प्रति यूनिट क्षेत्र में पाशों की संख्या, फसल से ल्यूर (प्रलोभन) की ऊंचाई आदि की आवश्यकता होती है। सामान्यतः कीट निगरानी के लिए 5 पाश प्रति हेक्टर प्रयोग किए जाते हैं।

कीट को अधिक समूह में पकड़ना (मास ट्रैपिंग):

मास ट्रैपिंग में एक या दोनों लिंगों के लिए एक ल्यूर का उपयोग करके निर्धारित लक्ष्य कीट को पाश द्वारा बड़ी मात्रा में आकर्षित किया जाता है और ये प्रायः उन

कीटों के लिए सफल होता है जिनमें फेरोमोनस के प्रति आकर्षण होने की क्षमता अत्यधिक विकसित होती है। सामान्यतः इस विधि में निगरानी से 5 गुना अधिक पाशों का प्रयोग किया जाता हैं।

प्रलोभन या आकर्षित करके मारने की विधि:

इस प्रक्रिया में फेरोमोन को कीटनाशक के साथ प्रयोग किया जाता है और आकर्षित किए गए कीटों को मार दिया जाता है।

संभोग विघटन हेतु फेरोमोन का उपयोग:

फसल के क्षेत्र में कृत्रिम फेरोमोन योगिकों को उच्च अंश (मात्रा) में छोड़ा जाता है, जो संचार की विफलता के कारण कीटों के बीच भ्रम पैदा करता है जिससे संभोग और मादा निषेचन रुकता है। यह नियंत्रण विधि सफलतापूर्वक जिप्सी शलभ (लाइमेंट्रीया डिस्पर), तंबाकू की सूंडी (स्पोडोप्टेरा लिटटोरा) और गुलाबी बॉलवर्म (पेक्टिनोफोरा गॉसिपिएला), टमाटर का पिन वर्म जैसे कीटों पर की गई।

फेरोमोन पाश (ट्रैप) :

फेरोमोन पाश विभिन्न डिजाइनों में उपलब्ध हैं , उनमें से कुछ नीचे वर्णित हैं। एक ही डिजाइन के पाश एक से अधिक कीट प्रजातियों के लिए उपयोगी हो सकता है लेकिन फेरोमोन ल्यूर प्रत्येक कीट के लिए विशिष्ट है। पाश का चयन मुख्य रूप से कीट के प्रकार और उसके व्यवहार पर निर्भर करता है:

1. फ़नल/ स्लीव पाश (ट्रैप):

इन पाश को इस तरह से रखा जाता है कि उसका ल्योर फसल की ऊंचाई से 1 फीट ऊपर हो। एक बार कीट जब फनल (कीप) की दीवार से टकराता है तो वह प्लास्टिक की आस्तीन (पैकेट) में गिर जाता है जहां से वह बाहर निकल नहीं पाता है। इन पाश का उपयोग आमतौर पर लेपिडोप्टेरन कीटों जैसे- चना फली छेदक (हेलिकोवरपा आर्मिगेरा), तंबाकू की सूंडी (स्पोडोप्टेरा लिटटोरा), गुलाबी बॉलवर्म, (पेक्टिनोफोरा गॉसिपिएला) आदि के लिए प्रयोग किया जाता है।

चित्र 1: फ़नल पाश(ट्रैप)

2. डेल्टा पाश (ट्रैप)

ये पाश इस प्रकार से बनाया गया है जिसमें कीट दोनों तरफ से प्रवेश कर सकते हैं जैसा कि चित्र 2 में दिखाया गया है। पाश का आधार पर एक चिपचिपा लाइनर होता है और शीर्ष भाग सूर्य के प्रकाश से सुरक्षा प्रदान करता है। इन पाशों को भी फसल से 1 फीट ऊपर स्थापित करने की आवश्यकता होती है। यह पाश अधिकतर मूंगफली लीफ़ माइनर, हीरक पीठ शलभ और अन्य लेपिडोप्टेरन कीटों के लिए अनुशंसित किया जाता है।

चित्र 2: डेल्टा पाश(ट्रैप)

3. फल मक्खी पाश (ट्रैप):

इन प्रकार के पाशों का उपयोग फल मक्खियों की विभिन्न प्रजातियों को आकर्षित करने और मारने के लिए किया जा सकता है। ये प्रजातियां हैं- खरबूज फल मक्खी (बैक्ट्रोसेरा कुकुरबिटी), ओरिएंटल फल मक्खी (बी॰

डोर्सलिस), पीच फल मक्खी (बी॰ ज़ोनेटा), अमरूद फल मक्खी (बी॰ करेकटा) आदि।

चित्र 3: कीट फेरोमोन पाश (ट्रैप) / मैक्फिल टाइप

4. वोटा पाश (ट्रैप)/ पानी का पाश:

इसका प्रयोग फसलों में बड़े पैमाने पर कीटों को पकड़ने के लिए किया जाता है । मुख्य तौर पर ये गन्ने के छेदक या मूंगफली का लीफ़ माइनर, टमाटर के

चित्र 4: वोटा पाश (छवि स्रोत: https://www.pestcontrolindia.com)

पिनवर्म के लिए प्रयोग किया जाता है। यह पाश एक पोल पर स्थापित किया जाता है और इसमें एक एडेप्टर, पानी के लिए बेसिन होता है (पानी में मिट्टी का तेल / डिटर्जेंट मिलाया जाता है) और इसके साथ एक ल्यूर (प्रलोभन) लगाने का होल्डर होता है।

फेरोमोन के लाभ:

फेरोमोन एकीकृत कीट प्रबंधन रणनीतियों का महत्वपूर्ण घटक बन रहे हैं, जिसमें ज्यादातर आवश्यकतानुसार कीटनाशकों का प्रयोग करने का लक्ष्य होता है। कीटनाशक प्रयोग की आवश्यकता कीटों की वास्तविक कीट गिनती पर करती है या फेरोमोन ट्रैप कैच पर निर्भर है। यह बड़े पैमाने पर कीटों को फंसाने और/ अथवा संभोग विघटन के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है जो कीट की संख्या को कम कर देता है और जिससे आवश्यकता पड़ने पर कीटनाशकों का प्रयोग किया जा सकता है। इन तकनीकों का उपयोग करने के कई लाभ हैं जो नीचे सूचीबद्ध हैं -

1. इससे पर्यावरण प्रदूषण की संभावना भी नहीं है और न ही अनाज में अवशेषों की समस्या है।
2. किसान आसानी से प्रयोग कर सकते हैं।
3. कीटनाशक प्रयोगों और इस प्रकार निविष्ट लागत की आवश्यकता को कम करता है।
4. फेरोमोन प्रजाति विशिष्ट है इसलिए यह गैर-लक्ष्य कीटों जैसे कि परजीव्याम (पैरासाइटोइड्स) और परभक्षी के लिए यह बहुत सुरक्षित है।
5. इससे कीट का पता प्रारंभिक चरण में लगाया जा सकता है जिससे संभावित हानि को रोका जा सकता है।

प्रकृति अपरिमित ज्ञान का भंडार है, पत्ते-पत्ते में शिक्षापूर्ण पाठ हैं, परंतु उससे लाभ उठाने के लिए अनुभव आवश्यक है।

- हरिऔध

फसल अवशेषों का प्रबंधन एवं वैकल्पिक उपयोग

रणबीर सिंह, शिवाधर मिश्र एवं अंचल दास

जैवपदार्थ उपयोग इकाई - सस्य विज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

चित्र विभिन्न फसलों से प्राप्त फसल अवशेष

भारत एक कृषि प्रधान विकासशील देश है। यहां कृषि क्षेत्र में अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं। जिसमें प्राचीन एवं वर्तमान प्रासंगिक पद्धति जैविक खेती है। इसमें धरती माता को जैविक माध्यम माना गया है, जिसमें असंख्यक सूक्ष्मजीव निवास करते हैं। जैविक मृदा संरचना के संरक्षण के रूप में फसल अवशेषों से बनी खाद के उपयोग से अनेक लाभ मिलते हैं। जिसके लिए भारतीय कृषक ऐसी विधियों का उपयोग करते हैं जिससे मृदा उर्वरता शक्ति, मृदा संरचना और जैव विविधता बनी रहती हैं तथा विषाक्त पदार्थ मानव, पशु और पर्यावरण जोखिम को कम करते हैं।

जैविक खेती में फसल अवशेषों का विशेष योगदान है। किसान इन फसल अवशेषों का पुनर्चक्रीकरण करके लाभ प्राप्त कर सकते हैं। खेत-खलियानों से प्राप्त विभिन्न फसल अवशेषों जैसेः गेहूं का भूसा, कपास के डंठल, गन्ने की सूखी पत्तियां तथा धान का भूसा इत्यादि की कुछ मात्रा का खेत में पुनर्चक्रण किया जा सकता है। अनेक प्रयोगों व अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि गेहूं व धान का भूसा डालने से उत्पादन बढ़े या नहीं परंतु भूमि उर्वरता पर अवश्य ही धनात्मक प्रभाव होता है। यद्यपि धान व गेहूं का भूसा डालने पर प्रारंभ में पोषक तत्वों के स्थिरीकरण के कारण इनकी कमी हो जाती है परंतु इसके साथ किसी दलहन फसल के भूसे को मिलाकर इस घटक को दूर किया जा सकता है। अतः फसल अवशेषों के प्रयोग से मृदा उर्वरता व उत्पादकता को बढ़ाकर अधिकतम उत्पादन के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है।

फसल अवशेष पौधे का वह भाग होते हैं, जो फसल की कटाई और गहाई के बाद खेत में छोड़ दिए जाते हैं। भूसा, तना, डंठल, पत्ते व छिलके इत्यादि फसल अवशेष कहलाते हैं। सरसों, गेहूं, धान, ग्वार, मूंग, बाजरा, गन्ना

व अन्य दूसरी फसलों से काफी मात्रा में फसल अवशेष मिलते हैं। सबसे ज्यादा फसल अवशेष अनाज वाली फसलों में तथा दलहन एवं तिलहन फसलों में कम फसल अवशेष पाए जाते हैं। सबसे कम फसल अवशेष दलहनी फसलों से मिलते हैं। इन फसल अवशेषों को अगर फिर से प्रयोग किया जाए तो मिट्टी की उपजाऊ शक्ति तथा उत्पादकता बढ़ेगी। इस अवशेषों में पोटाश की मात्रा सबसे अधिक होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने एवं भोजन बनाने में फसल अवशेषों का काफी हिस्सा इंधन के रूप में चला जाता है तथा बचे हुए फसल अवशेष खेत में ही नष्ट हो जाते हैं। इसलिए किसानों को फसल अवशेषों का महत्व समझना चाहिए।

हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 635 मिलियन टन फसल अवशेषों का उत्पादन होता है, जो कि किसानों के लिए बहुपयोगी प्राकृतिक संसाधन है। इनका उपयोग पशु आहार, मृदा सतह पर पलवार के रूप में, जैविक खाद, कंपोस्टिंग, ईंधन, सामान पैक करने में, घरों में छत बनाने में एवं औद्योगिक क्षेत्रों में किया जाता है। इनमें से 58 प्रतिशत अनाज वाली फसलों से, 17 प्रतिशत गन्ना, 20 प्रतिशत रेशा वाली फसलों, 3 प्रतिशत दलहनी फसलों 5 प्रतिशत तिलहनी फसलों से उत्पन्न होते हैं। एक अनुमान के अनुसार देश में पैदा होने वाले फसल अवशेषों से 77.67 लाख टन मुख्य फसल पोषक तत्व (25-37 लाख टन नाइट्रोजन, 4-08 लाख टन फॉस्फोरस तथा 47-92 लाख टन पोटाश) होते हैं। हमारे देश में फसल के अवशेषों का अधिकांश भाग घरेलू कार्यों में उपयोग किया जाता है या फिर इन्हें नष्ट कर दिया जाता है जैसे; कपास, सनई, अरहर आदि के तने, गन्ने की सूखी पत्तियां, धान व गेहूं का पुआल जलाने के काम में उपयोग कर लिया जाता है। गेहूं, गन्ने की हरी पत्तियां, आलू एवं मूली की पत्तियां, पशुओं का खिलाने में उपयोग की जाती हैं। इन फसल अवशेषों का आधा भाग पशुओं के चारे एवं ईंधन आदि के रूप में प्रयुक्त कर भी लिया जाए और आधा भाग भूमि में मिला दिया जाए तो भी भूमि को प्रतिवर्ष लगभग 38 लाख टन पोषक तत्व प्राप्त हो जाते हैं जोकि एन.पी.के. की खपत का लगभग एक चौथाई हैं। इसके अलावा फसल अवशेषों में द्वितीय एवं सूक्ष्म पोषक तत्व भी पाए जाते हैं। फसल अवशेषों को भूमि में दबाने में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है, और मृदा संरचना में भी सुधार होता है। अनाज, दलहन, तथा नकदी फसलों आदि में विभिन्न मात्राओं में फसल अवशेष उत्पन्न होते हैं (सारणी 1%)।

सारणी 1. भारत में विभिन्न फसलों द्वारा अवशेष उत्पादन (मि.टन/वर्ष)

फसल का नाम	वार्षिक उत्पादन	अवशेष उत्पादन
धान	103-06	154-59
गेहूं	94-04	15-86
मक्का	21-02	31-53
जूट	9-92	21-32
कपास	30-52	91-56
मूंगफली	6-89	13-78
गन्ना	6-89	138-68
सरसों	6-85	20-55
मोटे अनाज	2-29	3-63
कुल	621-31	635-32

स्रोतः विस्तार बुलेटिन-59] 2016 भारतीय गेहूं एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

किसानों द्वारा फसल अवशेषों को जलाने के कारण

- अगली फसल की जल्दी बुवाई के लिए खेत खाली करने के उद्देश्य से एवं कम लागत में खेत खाली करने के लिए।
- मृदा जनित रोगों के प्रभाव को कम करने के लिए
- किसानों के खेत में खड़ी हुई खरपतवारों को कम करने के लिए।
- बढ़ता यंत्रीकरण, विशेष रूप से कंबाईन हार्वेस्टर से फसलों की कटाई।
- फसल की कटाई के समय श्रमिकों की कमी तथा इनके द्वारा कटाई करवाने पर अधिक लागत।
- पशुओं की संख्या में कमी एवं पशुपालन में रुचि नहीं होना।

- कंपोस्ट बनाने में अधिक समय का लगना।
- पारंपारिक ढंग से फसल अवशेष हटाने में अधिक लागत।
- फसल अवशेष प्रबंधन के लिए समय कम होना।
- खेत को साफ करने में सरलता तथा खरपतवार, कीटों व रोगों का नियंत्रण आसानी से होना।

फसल अवशेषों को जलाने के नुकसान

- मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव-फसल अवशेषों को जलाने के कारण मृदा ताप में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप मृदा सतह सख्त हो जाती है एवं मृदा की सघनता में वृद्धि होती है साथ ही मृदा जलधारण क्षमता में कमी आती है तथा मृदा वातन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- मृदा पर्यावरण पर प्रभाव-फसल अवशेषों को जलाने से मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीवों की संख्या पर बुरा प्रभाव पड़ता है और इसके कारण लाभदायक कीटों की संख्या में कमी आती है।
- मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की उपलब्धता में कमी-फसल अवशेषों को जलाने के कारण मृदा में उपस्थित मुख्य पोषक तत्व नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की उपलब्धता में कमी आती है।
- मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ में कमी-फसल अवशेषों को जलाने से मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ में अधिक तापमान के कारण हानि होती है।
- वायु प्रदूषण-खेतों में फसल अवशेषों को जलाने के कारण अत्यधिक मात्रा में वायु प्रदूषण होता है। साथ ही ग्रीनहाउस गैसें जैसे कार्बन डाई ऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड आदि का उत्सर्जन ग्लोबल वार्मिंग के लिए भी उत्तरदायी होता है।
- जानवरों के लिए चारे की कमी-फसल अवशेषों को पशुओं के लिए सूखे चारे के रूप में प्रयोग किया जाने से पशुओं को चारे की कमी का सामना करना पड़ता है।

विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा शोधों से ज्ञात हुआ है कि एक टन भूसा जलाने से 160 कि.ग्रा. कार्बन डाई ऑक्साइड, 60 कि.ग्रा. कार्बन मोनो ऑक्साइड, 3 कि.ग्रा. पारटिकुलेट पदार्थ, 2 कि.ग्रा. सल्फर डाई ऑक्साइड तथा 199 कि.ग्रा. ऐश/राख इत्यादि उत्पन्न होकर वायुमंडल में मिलती है। इसके अलावा जो पोषक तत्व अवशेषों में होते हैं, वे भी नष्ट हो जाते हैं।

फसल अवशेष प्रबंधन

देश में खाद्यान्न के संबंध में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में धान-गेहूं फसल प्रणाली का महत्वपूर्ण योगदान हैं। भारत में गेहूं एक मुख्य फसल है। धान-गेहूं फसल चक्र में पानी व लागत की बढ़ती मांग को ध्यान में रखते हुए संसाधन संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। धान आधारित फसल चक्र में धान की अधिक उपज वाली देर से बोयी गई किस्मों के बाद रबी फसल लेने में भी देरी हो जाती है। हैप्पी टर्बो सीडर के द्वारा गेहूं की बुआई की जाती है। अतः फसल अवशेषों का अधिकांश भाग मृदा सतह पर छोड़ दिया जाता है, जिससे फसल उत्पादन में सुधार होता है। अतः ऐसी परिस्थितियों में हैप्पी टर्बो सीडर द्वारा रबी फसलों अनाज, दलहन एवं तिलहन की बुआई समय व संसाधन के बचाते हुए की जा सकती है। वर्तमान समय में ऊर्जा संकट एवं बढ़ती हुई फसल लागत को कम करने में हैप्पी टर्बो सीडर के द्वारा बुआई बहुत लाभदायक हैं। आज किसानों को ऊर्जा संकट, विशेष आर्थिक क्षेत्र, कृषि मृदा की बढ़ती कीमतें और ग्लोबल वार्मिंग जैसी गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। ये समस्याएं स्वतः ही विभिन्न समस्याओं को जन्म देती है। पिछले चार दशकों में खेती में बहुत सी समस्याएं आई है। इन समस्याओं को कम करने के लिए भारत अब दूसरी हरित क्रांति की ओर अग्रसर है।

चित्र.2 एसएमएस प्रणालीयुक्त कम्बाईन यंत्र से कटाई

शून्य कर्षण तकनीक में हैप्पी टर्बो सीडर के द्वारा गेहूं की खेती में लागत कम करने और प्राकृतिक संसांधनों (जल एवं मृदा) के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान आधुनिक खेती में संरक्षित कृषि पर जोर दिया जा रहा है। जिसमें फसल अवशेषों का अधिकांश भाग मृदा सतह पर छोड़ दिया जाता है। इससे न केवल मृदा में सुधार होता है बल्कि फसल उत्पादकता भी बढ़ती है।

चित्र 3. फसल अवशेषों में हैप्पी सीडर से बुवाई

फसल अवशेषों को आज प्रयोग मृदा में कार्बनिक पदार्थों को बढ़ाने, उर्वरा शक्ति बढ़ाने, पशुओं के लिए पौष्टिक आहार में एवं मृदा जीवों द्वारा अपघटन प्रक्रियों में महत्वपूर्ण स्थान है, जैसे;

फसल अवशेषों का खेतों में उपयोगः किसान कई प्रकार से फसल अवशेषों कों खेतों में मिला सकते हैं। भूमि की ऊपरी सतह पर इन्हें बिछाकर मिलाया जा सकता हैं। फसल अवशेषों से वर्मी कंपोस्ट बनाकर पोषक तत्व के रूप में खेत में मिलाएं। खेतों में पड़े अवशेषों को बार-बार जुताई करके मिलाएं, क्योंकि फसल अवशेष मृदा में देर से विघटित होते हैं। जल्दी एवं अच्छी तरह से विघटन के लिए सुपर फॉस्फेट भी इसके साथ मिला सकते हैं। कुछ फसलों के अवशेषों जैसेः आलू, गन्ना व सब्जियां आदि के पत्ते तथा अन्य भागों का उपयोग व प्रबंधन से मृदा में लीचिंग व गैसीय रूप से पोषक तत्वों की हानि को रोका जा सकता है। कुछ खरपतवार भी हरी खाद के रूप में प्रयोग किए जा सकते हैं। इन्हें मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करके मिट्टी में मिला देना चाहिए। फसल पारिस्थितिकी में पोषक तत्वों का आवश्यक घटक है। धान-गेहूं फसल चक्र के अंतर्गत लगभग 150 मिलियन टन सूखा भूसा उत्पन्न होता है, जिसका लगभग 30 प्रतिशत फसल अवशेष पुनः चक्रण के लिए उपलब्ध है, जो काफी मात्रा में रासायनिक उर्वरक के उपयोग को कम करते हैं एवं मृदा स्वास्थ्य में सुधार करते हैं। धान के एक टन फसल अवशेष में लगभग 6.1 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 0.8 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 114 कि.ग्रा. पोटैशियम पाया जाता है जबकि गेहूं के एक टन अवशेष या भूसे से 4.8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 0.7 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 9.8 कि.ग्रा. कार्बन मोनो ऑक्साइड, 460 कि.ग्रा. कार्बन डाई ऑक्साइड, 199 कि.ग्रा. राख, 2 कि.ग्रा. सल्फर डाई ऑक्साइड उत्पन्न होती हैं। ये गैसें ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेदार हैं। अतः किसान उनका पुनः चक्रीय कर मृदा में मिलाते हैं तो निश्चित तौर पर पौध पोषण एवं मृदा स्वास्थ्य सुधार के साथ-साथ पर्यावरण सुरक्षित रखने में सहायता मिलती है। खेती में फसल अवशेषों के उपयोग की दो विधियां हैं (अ) फसल अवशेषों को सीधे मिट्टी में मिलाकर (ब) फसल अवशेषों को पहले सड़ने दिया जाए और फिर खाद के रूप में इस्तेमाल करना। यदि किसान उपलब्ध फसल अवशेषों को जलाने की बजाए उनको वापस भूमि में मिला दें, तो निम्न लाभ प्राप्त होते हैं-

- **कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता में वृद्धि-** कार्बनिक पदार्थ ही एकमात्र ऐसा स्रोत है जिसके द्वारा मृदा में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्व फसलों को उपलब्ध हो पाते हैं तथा कंबाइन द्वारा कटाई किए गए फार्म उत्पादित अनाज की तुलना में लगभग 1.29 गुना अन्य फसल अवशेष होते हैं। ये खेत में सड़कर मृदा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करते हैं।
- **पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धिः** फसल अवशेषों में लगभग सभी आवश्यक पोषक तत्वों के साथ 0.45 प्रतिशत नाइट्रोजन की मात्रा पाई जाती है जो कि एक प्रमुख पोषक तत्व है।
- **मृदा भौतिक गुणों में सुधारः** मृदा में फसल अवशेषों को मिलाने से मृदा की परत में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ने से मृदा सतह की कठोरता कम होती है तथा जलधारण एवं मृदा वातन में वृद्धि होती है।
- **मृदा उर्वरा शक्ति में सुधारः** फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने से मृदा के रासायनिक गुण जैसे उपलब्ध

पोषक तत्वों की मात्रा, मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा पी.एच. में सुधार होता है तथा उसकी उत्पादकता एवं उर्वरता में सुधार होता है।

- **फसल उत्पादकता में वृद्धिः** फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने पर आने वाली फसलों की उत्पादकता में काफी मात्रा में वृद्धि होती है।
- फसल अवशेष मृदा में मिलाने से रासायनिक उर्वरकों की खरीद पर खर्च भी कम हो जाता है।

फसल अवशेषों का कंपोस्ट के रूप में उपयोगः कंपोस्टिंग एक जैव रासायनिक क्रिया है जिसमें वायवीय/एरोविक तथा अवायवीय/(एनारोविक) दोनों प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु कार्बनिक पदार्थों को विघटित करके बारीक उत्पाद बनाते हैं। यह पूर्ण सड़ा हुआ पदार्थ ही कंपोस्ट कहलाता है। कंपोस्ट दो प्रकार के होते हैंः

(अः) फार्म अपशिष्टों से बनाया गया कंपोस्टः इसमें खरपतवार, फसल अवशेष, भूसा, पशुओं का बचा हुआ बिछावन, फार्म की बाढ़ से काटी गई शाखाएं एवं पत्तियां, आदि शामिल हैं।

(बः) शहर व कस्बों के अपशिष्टों से बनाया गया कंपोस्टः इसमें शहर का मल, गांव का कूड़ा करकट जिसे कचरे के नाम से जाना जाता है।

चित्र 4. जैव पदार्थ उपयोग इकाई में गोबर फसल अवशेषों से तैयार कंपोस्ट

फसल अवशेषों का पलवार के रूप में उपयोगः धान-गेहूं, जौ, ज्वार, बाजरा, आदि का भूसा तथा मक्का, अरहर, नारियल व केले की सूखी पत्तियां, सूखी घास आदि को फसल की पंक्तियों के बीच बिछाकर पलवार के रूप में फसल अवशेषों का उपयोग कर सकते हैं। मल्चिंग के रूप में फसल अवशेषों के प्रयोग से मृदा व फसल से पानी का वाष्प बनकर उड़ने वाले पानी के ह्रास को रोका जा सकता है, खरपतवारों की रोकथाम की जा सकती है तथा मृदा तापमान भी नियंत्रित किया जा सकता है।

चित्र 5.फसल अवशेषों का पलवार के रूप उपयोग

फसल अवशेषों का पलवार के रूप में प्रयोग से सूर्य की तेज रोशनी भी सीधे मृदा के संपर्क में नहीं आ पाती है, मृदा नमी का नुकासान कम होता है एवं मृदा का तापमान कम होता है जिससे फसल के पौधे आसानी से उग सकते हैं तथा मृदा की जलशोषण क्षमता भी बढ़ती है। फसल अवशेषों का प्रयोग खाली पड़ी भूमि या फसल दोनों में किया जा सकता है। खड़ी फसल में फसल अवशेषों का उपयोग उस समय पर किया जाता है जब पौधों की ऊंचाई लगभग 8-10 सेंटीमीटर हो जाए। पौधों के अवशेष समान रूप से फसल की पंक्तियों के बीच बिखेर देना चाहिए। इस क्रिया में 4 टन भूसा प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है।

फसल अवशेषों का पशु चारे के रूप में उपयोगः पशु चारे को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है, जैसे- चारा, हरा चारा एवं शुष्क चारा। घास-पात, खरपतवारों तथा अन्य चारे के फसलों के अवशेषों को सीधे पशु द्वारा चराई के रूप में उपयोग कर सकते हैं तथा मक्का, ज्वार, बाजरा, नेपियर घास, रिजका, बरसीम, जई आदि फसलों को हरी अवस्था में खेत में कुट्टी काटकर पशुओं को खिला सकते हैं। इसके अतिरिक्त जिन खाद्यान्न का

भूसा पशु चारा के लिए अधिक उपयोग किया जाता है उनमें गेहूं, जई, धान, ज्वार बाजरा, रागी, सावां एवं कागुन हैं। दलहनी फसलों के भूसे में चना, मटर, अरहर, मसूर, उड़द, मूंग आदि हैं तथा तिलहनी फसलों के भूसे में सरसों, लाही, सोयाबीन एवं तिल अधिक उपयोगी होते हैं। पशुओं के लिए शरीर भार के अनुसार आवश्यक शुष्क पदार्थ के आधे भाग की आपूर्ति तथा शेष आधे शुष्क पदार्थ की आपूर्ति हरे चारे के द्वारा करनी चाहिए।

फसल अवशेषों का पौष्टीकरणः फसल अवशेषों जैसेः धान की पुआल, मक्का, ज्वार, बाजरे की कड़वी, गेहूं व जौ का भूसा, सूखी घास आदि में कार्बोहाइड्रेट्स तो प्रचुर मात्रा में पाया जाता है परंतु प्रोटीन की कमी होती है। इसको खाने से पशुओं को संतुलित पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा नहीं मिल पाती है इसके लिए फसल अवशेषों को पशुओं को खिलाने से पहले खाद्यान्न फसलों के अवशेषों जैसे चोकर आदि के अलावा भूसे में 1-2 प्रतिशत यूरिया, 10-15 प्रतिशत शीरा, 20 प्रतिशत नमक तथा 04 प्रतिशत खनिज लवण आदि मिलाकर फसल अवशेषों की गुणवता में सुधार कर सकते हैं।

फसल अवशेषों का चारा संरक्षण के रूप में उपयोगः पशुओं को हरा चारा केवल वर्षा के मौसम में अर्थात् जुलाई से अक्तूबर में ही मिल पाता है इस समय हरे चारे की अधिकता होती है। इस चारे को हे तथा साइलेज के रूप में संरक्षित कर पशुओं को वर्ष भर चारे की व्यवस्था की जा सकती है। हे उस हरित शुष्क चारे को कहा जाता है जिसे घासों को पूर्ण परिपक्व होने से पूर्व की अवस्था में काटकर छाया अथवा अल्प धूप में कृत्रिम रूप से सुखाकर संगृहीत करने योग्य बना लिया जाता है ताकि हरे चारे के अधिक गुण विद्यमान हों। यह चारा भूसा तथा पुआल की अपेक्षा स्वादिष्ट एवं पौष्टिक होता है। हे निर्माण का उत्तम समय सितंबर से अक्तूबर तथा अप्रैल से मई तक होता है। हे बरसीम, रिजका, सोयाबीन, सेंजी, ग्वार, लोबिया, क्लोवर, मटर से बना सकते हैं। हे में शुष्क पदार्थ की मात्रा 80 से 85 प्रतिशत एवं नमी 16 प्रतिशत से कम होनी चाहिए। किसी भी हरे वानस्पातिक पदार्थ के वायु की अनुपस्थिति में किण्वन करने के उपरांत जो पदार्थ निर्मित होता है, उसे साइलेज कहा जाता है। साइलेज के लिए सबसे उत्तम फसल मक्का एवं ज्वार है। साइलेज कम से कम 3 महीने में बनकर तैयार होता है। साइलेज में शुष्क पदार्थ 60 प्रतिशत तक होते हैं तथा नमी 30 से 40 प्रतिशत होती है। साईलेज बनाने के लिए फसलों को दानों में दूध बनते समय अवस्था पर काटते हैं।

फसल अवशेषों से ऊर्जा एवं उद्योगों में उपयोगः फसल के अवशेषों से भारत में 17 हजार मेगावाट से अधिक बिजली का उत्पाद किया जा सकता है। पंजाब में बायोमास पावर लिमिटेड ने धान की पुआल से चलने वाले पावर संयंत्र/प्लांट बनाया है, जो वर्ष 2017 तक 96 मेगावाट बिजली का उत्पादन करने लगेगा। इस कंपनी का पटियाला में एक 12 मेगावाट का संयंत्र चल रहा है। फसल के अवशेष व गन्ने का रस निकालने के बाद बचने वाले भाग से हम ऊर्जा पैदा कर सकते हैं। इसके अलावा फसल के अवशेषों का उपयोग कागज उद्योगों में होता है, जिनसे विभिन्न प्रकार की किताबें एवं गत्ते बनाए जाते हैं।

फसल अवशेषों का मशरूम खेती में उपयोगः मशरूम उत्पादन में धान की पुआल या गेहूं के भूसे की आवश्यकता होती है, क्योंकि मशरूम को बिना भूमि के गेहूं के भूसे, धान की पुआल पर उगाया जाता है। मशरूम उत्पाद में कंपोस्ट तैयारी के लिए निम्न सामग्री आवश्यक है जैसे गेहूं का भूसा-100 कि.ग्रा., मुर्गी की खाद-400 कि.ग्रा., चोकर-100 कि.ग्रा., यूरिया-4.5 कि.ग्रा., जिप्सम-30 कि.ग्रा., लिन्ड्रेन-200 कि.ग्रा.।

फसल अवशेषों का संपीडित चाराः संपीडित पशुओं के चारों का निर्माण फसल अवशेषों सेल्युलोजिक अपशिष्ट, सांद्र राशन तथा शीरा के निर्माण से किया जाता है, जिसे एक निश्चित अनुपात में यांत्रिक विधि पूसा पावर चालित एनिमल फिड ब्लॉक बनाने की मशीन से निर्मित करके हाइड्रोलिक मशीन में लगभग 200 पौंड प्रति वर्ग इंच दबाव पर संपीडित किया जाता है। संपीडित पशु चारे का सामान्य संगठन इस प्रकार से है, जैसे गेहूं का भूसा 50-90 प्रतिशत, सान्द्र आहार एवं खनिज मिश्रण 10-39 प्रतिशत, शीरा 7-15 प्रतिशत। इस विधि से गेहूं का भूसा, चने का भूसा, अरहर का भूसा, मूंगफली का भूसा, ज्वार का भूसा, धान का पुवाल, जंगली घास, आम की पत्तियां,

सूखी कटी हुई बरसीम, दूब घास, मक्का के उतरे भुट्टे एवं मक्का कटी हुई तथा गन्ने की पत्तियां, आदि का परीक्षण भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान पूसा नई दिल्ली के कृषि अभियांत्रिकी संभाग में किया गया है।

फसल अवशेषों से फसल सुरक्षाः 50 से ज्यादा ऐसे पौधे हैं जिनकी पत्तियों, बीजों के तेल से हम बीमारी एवं कीटों की रोकथाम कर सकते हैं। जैसेः तंबाकू, लहसुन, तुलसी, करंज, महुआ, नीम, बौगनविलिया आदि पौधे आते हैं। नीम की पत्तियां, बीजों के तेल एवं खली से हम फसलों की बीमारी व कीटों पर नियंत्रण कर सकते हैं। बहुत से जीवाणु रोग, जो पौधों पर लगते हैं, का नियंत्रण नीम छाल के द्वारा किया जा सकता है। नीम मिश्रित यूरिया के प्रयोग से धान में लगने वाले बैक्टीरियल ब्लाइट में काफी कमी आ जाती है। खेत में नीम के तेल या खली के प्रयोग से नाइट्रोसोमोनास एवं नाइट्रोबैक्टर नामक बैक्टीरिया द्वारा की जाने वाली यूरिया का ह्रास रुक जाता है। नीम तेल के प्रयोग से पौध में लगने वाले वाइरस जनित रोगों का नियंत्रण भी किया जा सकता है, क्योंकि नीम तेल के प्रयोग से वाइरस को प्रसारित करने वाले कीटों का भी नियंत्रण कर सकते हैं।

जैविक खेती पद्धति के बढ़ने और सफल होने की उच्च संभावनाएं हैं क्योंकि लगातार जैविक कृषि उत्पादों की मांग बढ़ रही है। जिसके लिए अधिक जैविक उत्पादन हेतु जैविक खाद बनाने के लिए फसल अवशेषों का उपयोग करना सरल एवं सस्ता उपाय है। उपर्युक्त जानकारी का सारांश यह है कि मशीनीकरण द्वारा फसल अवशेषों का जैविक खाद बनाकर उचित उपयोग करके किसान ना केवल समय का सही उपयोग कर सकता है अपितु सही समय पर उचित फसल अवशेष का प्रबंधन करके कम लागत से अधिक पैदावार की प्राप्ति कर सकते हैं। अतः फसल अवशेष का प्रबंधन करके मिट्टी की उपजाऊ क्षमता को बढ़ावा देने के साथ-साथ पौधों को उपयोगी तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करके फसलों की गुणवता तथा मात्रा को बढ़ाया जा सकता है।

कष्ट ही तो वह प्रेरक शक्ति है जो मनुष्य को कसौटी पर परखती है और आगे बढ़ाती है।

- सावरकर

भारतीय भाषाएं नदियां हैं और हिंदी महानदी। हिंदी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती है। हमें इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करनी ही चाहिए। मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि हिंदी बिना हमारा काम चल नहीं सकता।

- रबिन्द्रनाथ टैगौर

विविधा....

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानांतरण केंद्र (कैटेट) - एक परिचय

जे.पी.एस. डबास
कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानांतरण केंद्र
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में वृहत अनुसंधान, शिक्षा तंत्र के साथ एक सुदृढ़ प्रसार तंत्र भी सक्रिय है, जिसने देशभर के किसानों और विभिन्न कृषि प्रसार संस्थानों में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में अग्रणी भूमिका निभाई है। इस प्रसार तंत्र ने अनेक संकल्पनाएं, विधियां और पद्धतियां विकसित की गईं और देशव्यापी परियोजनाओं में नेतृत्व प्रदान किया है। प्रौद्योगिकी हस्तांतरण कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने के लिए सन 1984 में एक पृथक प्रौद्योगिकी हस्तांतरण इकाई (यू.टी.टी.) की स्थापना की गई। इसने देश के विभिन्न स्थानों, जैसे उत्तर प्रदेश के फतेहपुर, मिर्जापुर, इलाहाबाद, उत्तरकाशी (वर्तमान उत्तराखंड), बुलंदशहर, गाजियाबाद जिले; मध्य प्रदेश के मंडला और राजस्थान का सीकर जिला में स्थान-विशिष्ट कार्यक्रम संचालित किए। इसके योगदान को देखते हुए तथा क्यू.आर.टी. (1983-1987) की अनुशंसाओं को मंजूर करते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने प्रौद्योगिकी हस्तांतरण इकाई का दर्जा बढ़ाकर सन 1998 में कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानांतरण केंद्र (CATAT) की स्थापना की।

इस केंद्र द्वारा विकसित उल्लेखनीय विधियों और रणनीतियों ने सघन खेती प्रणाली, सामुदायिक खेती, राष्ट्रीय प्रदर्शनी परियोजना, प्रचालनीय अनुसंधान परियोजना, बीज ग्राम योजना, मिनी-किट कार्यक्रम, लघु और सीमांत किसान विकास कार्यक्रम, एकीकृत संपूर्ण ग्राम विकास विधि, एकल खिड़की प्रणाली और किसान-से-किसान तक गुणवतापूर्ण बीज उत्पादन कार्यक्रम रहे, जिनकी कृषि विकास में ऐतिहासिक भूमिका रही और देशभर में विभिन्न संस्थानों ने समय-समय पर अपनाया। कुछ नए कार्यक्रम भी काफी लोकप्रिय रहे, जैसे टिकाऊ फसल उत्पादन के लिए जल प्रबंधन प्रौद्योगिकियों पर किसान सहभागिता कार्यात्मक अनुसंधान कार्यक्रम, किसान सहभागिता युक्त बीज उत्पादन, गेहूं के अग्रपंक्ति प्रदर्शन (FLDs), आकाशवाणी पाठशालाएं, देशभर के 16 कृषि विश्वविद्यालयों और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों के सहयोग से चलने वाला राष्ट्रीय प्रसार कार्यक्रम, स्वयंसेवी संस्थाओं के साथ सहभागिता कार्यक्रम, गावों का एकीकृत विकास और मॉडल ग्राम संकल्पना, नवोन्मेषी कृषक-मार्गदर्शित प्रसार डिलीवरी प्रणाली (नवोन्मेषी किसानों के माध्यम से प्रसार) आदि।

केंद्र का मुख्य लक्ष्य कृषि प्रसार और प्रौद्योगिकी आकलन एवं हस्तांतरण की नई-नई अवधारणाओं और विधियों को विकसित करने में एक राष्ट्रीय नेतृत्व प्रदान करना और गुणवता और मानकों के लिए एक राष्ट्रीय संदर्भ केंद्र के तौर पर कार्य करना है। यह केंद्र निम्न अधिदेश पर कार्य करता है:

- प्रौद्योगिकी विकास प्रक्रिया में आकलन और परिशोधन के तत्वों को लागू करना।

- नई संभावनाओं वाले वृद्धि क्षेत्रों के प्रचार-प्रसार के लिए प्रौद्योगिकी हस्तांतरण (TOT) विधियां विकसित करना।
- पूसा संस्थान द्वारा विकसित प्रौद्योगिकियों का आकलन एवं प्रचार-प्रसार।
- भा.कृ.अनु. परिषद के संस्थानों/ राज्य कृषि विश्वविद्यालयों/स्वयंसेवी संस्थाओं के साथ संपर्क के जरिए राष्ट्रीय स्तर पर प्रौद्योगिकी का आकलन एवं प्रचार करना।
- राष्ट्रीय स्तर पर ज्वलंत समस्याओं को हल करने में नई प्रौद्योगिकियों की क्षमता एवं दक्षता प्रदर्शित करना।
- कृषि विज्ञान मेला, कृषि संबंधी प्रदर्शनियों, प्रक्षेत्र दिवसों, प्रक्षेत्र भ्रमणों और समूह चर्चाओं के माध्यम से प्रशिक्षण और शिक्षण आयोजित करना।
- किसानों और प्रसार कर्मियों को प्रक्षेत्र सलाह सेवाएं प्रदान करना।
- वैज्ञानिकों और जनसंचार माध्यमों, यथा दूरदर्शन, आकाशवाणी और प्रिंट मीडिया के बीच संपर्क स्थापित करना।

प्रसार मॉडलों पर कार्यात्मक अनुसंधान के साथ-साथ केंद्र की नियमित गतिविधियां:

पूसा कृषि विज्ञान मेला

- पूसा संस्थान हर वर्ष पूसा कृषि विज्ञान मेले का आयोजन करता है। तीन दिनों तक चलने वाला यह मेला एक ज्वलंत विषय पर आधारित होता है। इस मेले का उद्घाटन आमतौर पर माननीय कृषि मंत्री के करकमलों द्वारा किया जाता है, तथा सचिव डेयर और महानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद तथा अन्य गणमान्य अतिथि भी मौजूद होते हैं। इसमें विशाल थीमेटिक मंडप में समसामयिक ज्वलंत विषय पर केंद्रित प्रौद्योगिकियां एक साथ प्रदर्शित की जाती हैं।
- मेले में पूसा संस्थान के अलावा राज्य कृषि विश्वविद्यालय, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों के उद्यम, स्वयंसेवी संस्थान / समितियां तथा प्रगतिशील किसान भी भाग लेते हैं और कृषक समुदाय के लाभ के लिए अपनी-अपनी प्रौद्योगिकियां प्रदर्शित करते हैं। देश के विभिन्न भागों से बड़ी संख्या में आगंतुक आते हैं, जिनमें किसान, खेतिहर महिलाएं, छात्र, प्रसार कर्मी, उद्यमी एवं अन्य आगंतुक शामिल हैं।
- किसानों को विभिन्न जीवंत प्रदर्शनियों, संरक्षित खेती प्रणालियों और प्रायोगिक प्रक्षेत्रों पर ले जाने और दिखाने के लिए प्रक्षेत्र भ्रमण की व्यवस्था रहती है।
- किसानों / खेतिहर महिलाओं में ज्ञान और सूचना का आदान-प्रदान बढ़ाने के लिए तीन तकनीकी सत्र और एक महिला सशक्तीकरण कार्यशाला का भी आयोजन किया जाता है।
- किसान परामर्श सेवा प्रकोष्ठ संपूर्ण मेला अवधि के दौरान कार्य करता रहा है जहां किसान पूसा संस्थान / राज्य कृषि विश्वविद्यालयों / अन्य भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों के विशेषज्ञों द्वारा कृषि परामर्श सेवाएं तथा अपनी खेती संबंधी समस्याओं का तत्काल समाधान प्राप्त कर सकते हैं।
- मेले में पूसा बीज विक्रय काउंटर में विभिन्न फसलों के उच्च उपजशील बीज बेचे जाते हैं। मेले में संस्थान के संचालनीय क्षेत्रों के अनेक किसान भी अपना स्टॉल लगाते हैं और अपने उत्पाद बेचते हैं।
- कृषि विज्ञान मेले के समापन समारोह के दौरान विभिन्न राज्यों के प्रगतिशील किसानों / खेतिहर महिलाओं को सम्मानित किया जाता है। प्रगतिशील /नवोन्मेनषी किसानों को पुरस्कृत करना कृषि विज्ञान मेले का एक मुख्य आकर्षण है। इससे किसानों को प्रोत्साहन मिलता है।

किसानों एवं प्रसार कर्मियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम

दिल्ली के विकास विभाग के प्रसार कर्मियों और किसानों के ज्ञान और कौशल को अपडेट करने के लिए

विभिन्न विषयों पर नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। विभिन्न राज्य विकास विभागों / स्वयंसेवी संस्थानों आदि के द्वारा प्रायोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम भी किए जाते हैं और इनका आयोजन संसाधनों, छात्रावास एवं अन्य सुविधाओं की उपलब्धता के आधार पर किया जाता है।

प्रदर्शनियों में भागीदारी

- यह केंद्र देश के विभिन्न भागों में लगने वाली अंतरराष्ट्रीय / राष्ट्रीय / क्षेत्रीय / संस्थागत कृषि प्रदर्शनियों में भाग लेकर उनमें भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान की प्रौद्योगिकियां और सेवाएं प्रदर्शित एवं प्रचारित एवं प्रसारित करता है।

प्रक्षेत्र दिवस

- कैटेट अंगीकृत गांवों में किसानों के खेत पर समय-समय पर प्रक्षेत्र दिवस आयोजित करता है। ये प्रक्षेत्र दिवस प्रदर्शन क्षेत्रों में रबी या खरीफ ऋतुओं पर आयोजित किए जाते हैं। इस दौरान वैज्ञानिक किसान गोष्ठी और सवाल-जवाब भी होते हैं।

अग्रपंक्ति प्रदर्शन

- केंद्र की ओर से नियमित रूप से उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों, हरियाणा और दिल्ली के राष्ट्रीय राजधानी के अंतर्गत आने वाले जिलों के चयनित गांवों में गेहूं (गेहूं अनुसंधान निदेशालय द्वारा प्रायोजित) और मक्के (मक्का अनुसंधान निदेशालय द्वारा प्रायोजित) के अग्र पंक्ति प्रदर्शन आयोजित किए जाते हैं। इस कार्यक्रम के अंतर्गत गेहूं और मक्के की नवीन प्रजातियों और उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकियों को प्रदर्शित किया जाता है।

पूसा संस्थान-स्वयंसेवी संस्थान सहयोगात्मक कार्यक्रम

- पूसा संस्थान ने एक और किसान केंद्रित प्रसार कार्यक्रम की शुरुआत की है। यह सहयोगात्मक प्रसार कार्यक्रम देशभर के स्वयंसेवी संस्थाओं (VOs) के साथ मिलकर चलाया जा रहा है। इस प्रयास में, संस्थान ने देश के विभिन्न भागों से 28 स्वयंसेवी संस्थानों को अपने साथ जोड़ा है। इस अवधारणा में मुख्य लक्ष्य यह है कि स्वयंसेवी संस्थानों के जमीनी आधार का उपयोग किया जाए और उन्हें पूसा संस्थान के उन्नत कृषि उत्पादन प्रौद्योगिकियों का सहयोग दिया जाए, ताकि वे इनका स्थानीय स्तर पर आकलन और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण कर सकें। इस तरह स्वयंसेवी संस्थानों, किसानों और पूसा संस्थान, तीनों का लाभ सुनिश्चित किया गया है। यह परियोजना सन 2010 से प्रारंभ हुई।

किसान मॉल

- किसानों को अपने उत्पाद स्वयं बेचने के लिए विपणन विंडो प्रदान करने के उद्देश्य से किसान मॉल की स्थापना की गई है, जिसका संचालन कैटेट द्वारा किया जाता है। इस मॉल में निकटवर्ती गांवों के किसानों को अपने उत्पाद बेचने के लिए स्थान मुहैया करवाया जाता है, जहां लाकर अपना उत्पाद बेच सकते हैं। इससे जहां उन्हें बिचौलियों के शोषण से मुक्ति मिलती है, वहीं शहरी उपभोक्ताओं को शुद्ध कृषि उत्पाद उचित कीमत पर मिलता है। साथ ही किसानों को शहरी उपभोक्ताओं से जुड़ने का एक अवसर मिलता है। इसी परिसर में पूसा उत्पाद विक्रय केंद्र भी स्थित है, जिसमें पूसा संस्थान में विभिन्न अनुसंधान प्रक्षेत्रों से शोध के दौरान उत्पादित अनाज, सब्जियों एवं अन्य कृषि उत्पादों को किफायती दरों पर बेचा जाता है।

मेरा गांव मेरा गौरव

- वैज्ञानिकों का किसानों के साथ सीधा वार्तालाप एवं आदान-प्रदान को बढ़ावा देने के लिए संस्थान ने मेरा गांव मेरा गौरव कार्यक्रम शुरू किया है। यह कार्यक्रम भारतीय कृषि सांख्यिकी अनुसंधान संस्थान और राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो के साथ मिलकर कुल 480 वैज्ञानिकों के साथ 120 क्लस्टर, जिसमें 600 गांव शामिल हैं, में चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य

अंगीकृत गांवों के किसानों को नियमित रूप से आवश्यकतानुसार जानकारी, ज्ञान और परामर्श सेवा प्रदान करना हैं।

बीज हब का विकास:

- संस्थान की प्रौद्योगिकियों का टिकाऊपन तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जब इसे अपनी भागीदार एजेंसियों के साथ बड़े पैमाने पर फैलाया जाए। इसके लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान-स्वयंसेवी संस्था सहयोगात्मक कार्यक्रम के अंतर्गत दो बीज हब, पहला उत्तर भारत (यंग फार्मर एसोसिएशन, राखड़ा, पंजाब के साथ) और दूसरा देश के पूर्वी भाग (पी.आर.डी.एफ. गोरखपुर के साथ) में विकसित किए गए हैं।

किसानों के क्षमतावर्धन के लिए जनसंचार संबंधी पहल और आकाशवाणी कृषि पाठशाला

- बड़े पैमाने पर किसानों के स्तर पर प्रौद्योगिकियों को द्रुतगति से हस्तांतरित करने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा नई दिल्ली, ऑल इंडिया रेडियो, नई दिल्ली एवं दूरदर्शन, नई दिल्ली ने आपसी सहयोग करते हुए एक मॉडल के रूप में नई पहल की है। इसके अंतर्गत विभिन्न फसलों और उनकी उत्पादन प्रौद्योगिकियों पर आकाशवाणी कृषि पाठशाला और कृषि दर्शन पाठशालाओं का आयोजन किया गया।

प्रकाशन

- केंद्र समय-समय पर किसानों के लिए उपयोगी तकनीकी बुलेटिन, पुस्तिकाएं और पैम्फलेट प्रकाशित करता रहता है।

उपर्युक्त कार्यों के सफलतापूर्वक करने के लिए केंद्र को उत्पादन इकाई का सहयोग मिलता है। इस इकाई में संस्थान के विभिन्न संभागों एवं केंद्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले वैज्ञानिकों को इकट्ठा किया गया है, ताकि किसानों की आवश्यकतानुसार समस्याओं के समाधान एवं विभिन्न कार्यात्मक अनुसंधान / तकनीकी हस्तांतरण कार्यों को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सके। यह इकाई विभिन्न संस्थानों की प्रौद्योगिकियों का प्रतिनिधित्व प्रदान करती है और कृषि को एक समग्र रूप से प्रसारित करने में केंद्र की मदद करती है।

प्रयोगशालाओं और शोध तंत्र से निकलने वाली प्रौद्योगिकियां तभी सार्थक और उपयोगी हो सकती हैं, जब वे किसानों के द्वारा स्वीकार्य हों। यह केंद्र, पूसा संस्थान और किसानों के बीच एक पुल के रूप में कार्य कर सच्चे मायनों में लैब से लैंड को जोड़ने की जिम्मेदारी का निर्वहन करता आ रहा है। इसके साथ ही प्रौद्योगिकियों का व्यावहारिक आकलन करने के साथ इनका फीडबैक अनुसंधान तंत्र को मुहैया करवाता है, ताकि प्रौद्योगिकी विकास कार्यक्रम को सही दिशा मिल सके।

जीवन की जड़ संयम की भूमि में जितनी गहरी जमती है और सदाचार का जितना जल दिया जाता है उतना ही जीवन हरा भरा होता है और उसमें ज्ञान का मधुर फल लगता है।

- दीनानाथ दिनेश

अधिक आय व स्वावलंबन हेतु उन्नत किसानों की प्रेरणास्त्रोत गाथा : आत्मनिर्भर कृषक

प्रतिभा जोशी, जय प्रकाश डबास, निशि शर्मा, नफीस अहमद, सर्वाशीष चक्रवर्ती, गिरिजेश सिंह महरा, अल्का जोशी, श्रुति सेठी एवं गोगराज सिंह जाट

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

भारतीय कृषि ने देश की अर्थव्यवस्था में सदैव ही महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है तथा देश को विकास की ओर अग्रसर किया है। भारत सरकार ने वर्ष 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने के लिए प्रौद्योगिकी के आधुनिकीकरण पर बल दिया है। उल्लेखनीय है कि सरकार ने वर्ष 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने का लक्ष्य रखा है। भारत में विश्व का 10वां सबसे बड़ा कृषि योग्य भू-संसाधन मौजूद है। देश की कुल जनसंख्या की आधी आबादी आज भी ग्रामीण भारत में निवास करती है और कृषि पर निर्भर है। उक्त तथ्य भारत में कृषि के महत्त्व को भली-भांति स्पष्ट करते हैं। आर्थिक सर्वेक्षण 2019-20 के अनुसार भारतीय आबादी का एक बड़ा हिस्सा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अन्य क्षेत्रों की तुलना में रोजगार अवसरों के लिए कृषि क्षेत्र पर अधिक निर्भर है। आंकड़ों के मुताबिक देश में चालू कीमतों पर सकल मूल्यवर्धन (GVA) में कृषि एवं सहायक क्षेत्रों का हिस्सा वर्ष 2014-15 के 18.2 प्रतिशत से गिरकर वर्ष 2019-20 में 16.5 प्रतिशत हो गया है, जो कि विकास प्रक्रिया का स्वाभाविक परिणाम है। समानांतर रूप से सरकार आय में वृद्धि को केंद्र में रखते हुए कृषि क्षेत्र को नई दिशा देने पर विशेष ध्यान दे रही है। किसानों के लिए शुद्ध धनात्मक रिटर्न सुनिश्चित करने हेतु राज्य/केंद्रशासित प्रदेशों के जरिए योजनाओं (मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना, नीम लेपित यूरिया, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, परंपरागत कृषि विकास योजना, राष्ट्रीय कृषि बाजार योजना, बागवानी के एकीकृत विकास के लिए मिशन, राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, इत्यादि) को बड़े पैमाने पर क्रियान्वित किया जा रहा है। भारत में कृषि क्षेत्र के विकास के लिए पूर्ववर्ती कार्यनीति ने मुख्यतया कृषि उत्पादन को बढ़ाने और खाद्य सुरक्षा को सुधारने पर जोर दिया। इस कार्यनीति में निम्नलिखित मुद्दों को शामिल किया गया था जैसे बेहतर प्रौद्योगिकी और किस्मों के माध्यम से उत्पादकता को बढ़ाना तथा गुणवतापूर्ण बीज, उर्वरक, सिंचाई और कृषि रसायनों के उपयोग को बढ़ावा देना कुछ फसलों के लिए लाभकारी कीमतों तथा कृषि संबंधी निवेश सामग्री पर सब्सिडियों के रूप में प्रोत्साहन ढांचा तैयार करने, कृषि में और कृषि के लिए सार्वजनिक निवेश को बढ़ावा देना तथा इससे संबद्ध संस्थाओं को सुविधा प्रदान करना। परंतु किसानों की वास्तविक आय को 2015-16 के आधार वर्ष की तुलना में 2022-23 तक दोगुना करने के लिए किसानों की आय में 10.41 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर अपेक्षित है। इसका अर्थ यह है कि कृषि आय की वर्तमान और पूर्व में हासिल की गई वृद्धि दर को तेजी से बढ़ाना होगा। अतः आत्मनिर्भर भारत व कृषक स्वालंबन हेतु कृषि क्षेत्र के अंदर और बाहर किसानों की आय को बढ़ाने के सभी संभावित स्रोतों का सदुपयोग करने के लिए सशक्त उपायों की जरूरत होगी। कृषि क्षेत्र के अंतर्गत आय को बढ़ाने के स्रोत में मुख्य बिंदु निम्नवत हैं।

- कृषि उत्पादकता में वृद्धि।
- सकल कारक उत्पादकता में सुधार।
- कृषि में विविधीकरण।
- फसल गहनता में वृद्धि।
- उत्पादों का मूल्य संवर्धन।
- कृषि का व्यवसायीकरण।
- संवर्धित प्रौद्योगिकियों का सृजन और प्रसार।
- उत्पादकों के लिए मूल्य प्रोत्साहन।
- कृषि उत्पादकों के संगठनों को प्रोत्साहन।

- उत्पादन को प्रसंस्करण से जोड़ना।

कृषक समाज में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो उपर्युक्त राह पर चलकर अन्य कृषकों के प्रेरणास्रोत बने हैं। ऐसे बहुत सारे किसान पूसा संस्थान के संपर्क में हैं तथा उन्हें उनकी उपलब्धियों के लिए संस्थान द्वारा सम्मान प्रदान किया गया है। इस लेख में हम कुछ ऐसे कृषक बंधुओं की सफलता गाथा प्रस्तुत कर रहे हैं जिन्होंने संसाधनों के उचित प्रयोग से उन्नत आय सृजन कर कृषि के विकास में उल्लेखनीय प्रोत्साहन दिया है।

1. उन्नतशील कृषक नवीन तकनीकों से ग्राही व कृषक वैज्ञानिक प्रसार माध्यम के सकल उदाहरण

नामः श्री वी रविचंद्रन

पताः वी पी ओ: 28/52 नल्लामंगुड़ी अग्रहारम नन्नीलम,

जिलाः तिरुवरूर

राज्य: तमिलनाडु- 610105

मुख्य फसलें एवं उद्यमः धान, गन्ना, कपास, दालें

मुख्य उपलब्धियां:

- श्री वी रविचंद्रन ने ड्रिप सिंचाई, जीएम फसलों, आणविक तकनीकों के माध्यम से विकसित की गई किस्मों, जैविक नियंत्रण उपायों और कीटों और रोगों की भविष्य प्रणाली में कृत्रिम बुद्धिमता के उपयोग जैसी वैज्ञानिक उत्पादन तकनीकों को अपनाया है।
- उन्होंने सफलतापूर्वक उपज का अनुकूलन करने के लिए उत्पादन प्रणाली के तहत दलहन की खेती की एक प्रणाली तैयार की है।
- इनके द्वारा चावल की खेती में सफलतापूर्वक ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग किया जाता है।
- श्री वी रविचंद्रन द्वारा चावल, कपास और दालों की खेती के लिए लागत लाभ अनुपात को अनुकूलित किया गया है।
- इन्होंने विभिन्न मंचों पर किसानों, छात्रों, शोधकर्ताओं और शिक्षाविदों के बीच सिद्ध प्रौद्योगिकियों का प्रदर्शन किया।
- ये राज्य कृषि विश्वविद्यालय/कृषि विज्ञान केंद्र द्वारा प्रायोजित गतिविधियों में भागीदारी करते हैं। ये फेसबुक, ट्विटर, लिंक्डइन और व्हाट्सएप आदि के माध्यम से सोशल मीडिया पर सक्रिय हैं।
- श्री वी रविचंद्रन जी को सर्वश्रेष्ठ किसान पुरस्कार (2009), इनोवेटिव राइस फार्मर अवार्ड (2010), बेस्ट एसआरआई किसान अवार्ड (2011), डीन क्लेकर अवार्ड (2013) एवं हरित क्रांति पुरस्कार (2016) कई पुरस्कार मिले हैं।
- इन्होंने उपज और उत्पादकता बढ़ाने के लिए कृषि स्तर पर अपनाई गई नवीन तकनीकों पर कई आमंत्रित व्याख्यान दिए।

2. प्रगतिशील किसान द्वारा उच्च तकनीक से केले की खेती, मूल्य संवर्धन व विपणन

नाम: श्री धीरेंद्र कुमार भानुभाई देसाई

गांवः पनेठा, तहसीलः झगड़िया

जिलाः भरूच

राज्य: गुजरात -393120

मुख्य फसलें एवं उद्यमः उच्च तकनीक से केले की खेती

मुख्य उपलब्धियां:

- इन्होंने उच्च तकनीक वाले केले उत्पादन तकनीक को अपनाया है जिसमें ऊतक संवर्धित पौधों, ड्रिप सिंचाई और एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन शामिल हैं। प्रौद्योगिकी के माध्यम से वह निर्यात गुणवता (80 टन/हेक्टेयर) वाले केलों से 6-7 लाख रूपये का शुद्ध लाभ सालाना कमा रहा है।
- उच्च बाजार मूल्य प्राप्त करने और फसल के कटाई/तुड़ाई के बाद के नुकसान को कम करने के लिए पैकेजिंग और ग्रेडिंग तकनीकों को भी अपनाया है।
- इन्होंने लागत में कटौती, प्रभावी फसल प्रबंधन क्रियाओं और पानी और पोषक तत्वों के कुशल

अनुप्रयोग के लिए उच्च तकनीक प्रौद्योगिकी और मशीनरी को अपनाया है।

- इनके प्रदर्शन को देखने के बाद, लगभग 1000 से अधिक किसानों ने उच्च तकनीक उत्पादन तकनीकों के साथ केले की खेती शुरू की और बेहतर आय अर्जित कर रहे हैं।
- इन्होंने विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लिया है तथा सरकार और विश्वविद्यालयों द्वारा सर्वश्रेष्ठ कृषि-उत्पाद के लिए कई पुरस्कार प्राप्त किए हैं।
- इन्हें राज्य और राष्ट्रीय संगठनों के कई पुरस्कार मिले हैं जैसे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद से 'जगजीवन राम अभिनव किसान पुरस्कार (2017)', भा.कृ.अनु.प.- भा.कृ.अनु.संस्थान 'नवोन्मेषी किसान पुरस्कार (2019)', 'श्री सरदार पटेल कृषि संस्कार पुरस्कार (2017)', 'बेस्ट आत्मा फार्मर अवार्ड (2014)", 'स्वर्गीय गौरी हाई-टेक केला अवार्ड (2013)' आदि।

3. कृषि विविधिकरण व आधुनिक तकनीकों द्वारा उत्पादकता व आय में वृद्धि

नाम: श्री रविंद्र मणिकराव मेटकर

गांवः मातो श्री, कृषि फार्म म्हसला,

अंजनगांव बारी रोड, बडनेरा,

जिलाः अमरावती

राज्य: महाराष्ट्र- 444602

मुख्य फसलें एवं उद्यम: अनाजीय फसलें, बागवानी फसलें, वानिकी, डेयरी, मुर्गी पालन, और मछली पालन

मुख्य उपलब्धियां:

- श्री रविंद्र मेटकर गेहूं, धान में उच्च उत्पादन तकनीक जैसे ड्रिप सिंचाई को अपनाया है। पोल्ट्री खाद का उपयोग, पोल्ट्री, नर्सरी प्रबंधन, और जैविक खेती एवं गर्मियों में फॉगर्स का उपयोग आदि को अपनाया है।
- इन्हें विदर्भ के 'पोल्ट्री किंग' के रूप में जाना जाता है, जो 1,50,000 से अधिक मुर्गियां पालते हैं और प्रतिदिन 90,000 अंडे बेचते हैं।
- उनके प्रदर्शन को देखने के बाद, लगभग 1000 से अधिक किसानों ने बेहतर आय अर्जित करने के लिए उच्च तकनीक उत्पादन तकनीकों को अपनाना शुरू कर दिया।
- फेसबुक, ट्विटर, यू ट्यूब और व्हाट्सएप के माध्यम से श्री मेटकर मूल्यवान कृषि जानकारी का प्रसार करते हैं।
- उन्हें राज्य और राष्ट्रीय संगठनों से कई पुरस्कार मिले हैं जैसे 'वसंतराव नाइक पुरस्कार (2014)', 'राजीव गांधी रत्न पुरस्कार', 'भा.कृ.अनु.प.-भा.कृ.अनु. संस्थान नवोन्मेषी किसान पुरस्कार (2019)', 'पंजाब राव देशमुख कृष्ण रत्न पुरस्कार (2020)' आदि।
- श्री मेटकर ने कृषि में व्यावसायिकता और इसके व्यावसायिक प्रयोग पर कई आमंत्रित व्याख्यान दिए हैं।

4. व्यावसायिक बीज उत्पादन एवं प्रसंस्करण द्वारा आय में वृद्धि

नाम: श्री सुखजीत सिंह भंगु

गांवः कनकवाल भंगुन, सुनाम

जिला: संगरूर

राज्य: पंजाब -148028

मुख्य फसलें एवं उद्यम: धान, गेहूं, मक्का, ज्वार

मुख्य उपलब्धियां:

- श्री सुखजीत सिंह वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के माध्यम से महत्वपूर्ण अनाज फसलों के बीज उत्पादन में शामिल एक सफल कृषि उद्यमी हैं और गुणवता वाले बीज उत्पादन कर रहे हैं।
- इन्होंने भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान और अन्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा विकसित उन्नत किस्मों को अपनाया है।

- इन्होंने बीज बिक्री से आय बढ़ाने और इसे एक व्यावसायिक उद्यम बनाने के लिए एक बीज कंपनी की स्थापना की है।
- इनके पास बीज बोने से लेकर बीज प्रसंस्करण तक की अधिकांश कृषि गतिविधियों को करने के लिए फार्म मशीनें हैं।
- श्री सिंह ने कृषि मशीनीकरण, बीज प्रसंस्करण और जल प्रबंधन पर भारत और विदेशों में कई प्रशिक्षण प्राप्त किए हैं।
- इन्हें राज्य और राष्ट्रीय संगठनों से कई पुरस्कार मिले हैं जैसे कि 'फार्म लेवल सीड प्रोसेसिंग अवार्ड (2018)', 'इंडिया एग्रीबिजनेस अवार्ड (2019)', 'बेस्ट फार्मर अवार्ड (2019)' आदि।
- श्री सिंह ने भारत में बीज उत्पादन और प्रसंस्करण क्षेत्र और इसकी चुनौतियों और अवसरों पर कई आमंत्रित व्याख्यान दिए हैं।

निष्कर्ष-

कृषि, किसान के जीवन का आयाम है तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का मूलभूत आधार है। जीवन की कड़ी चुनौतियों को अवसरों में परिवर्तित कर देना, यही इन सफल किसानों ने अपनी लगन व उद्यमशीलता से साबित कर दिखाया है और राष्ट्रीय छवि के व्यक्तित्व के रूप में जाने जाते हैं। ग्रामीण स्तर पर नवोन्मेषी किसान तकनीकों कोतेजी के साथ उन्नत रहे कर हैं जो उनके साथी किसानों द्वारा अपनाई जा रही हैं। किसी भी तकनीक का स्थानीय स्तर पर विकास किसान के उस तकनीक को अपनाने के निर्णय पर निर्भर करता है । आज के समय में बढ़ती जनसंख्या, कृषि हेतु घटती भूमि, पलायन आदि समस्याओं के बावजूद कृषि की चुनौतियों का सामना कर व आशातीत सफलता प्राप्त कर इन सफल कृषकों ने अपना मुकाम प्राप्त किया है तथा इन्हें अनेक राष्ट्रीय व अंतरर्राष्ट्रीय पटल पर सम्मानित किया गया है। निश्चित ही आज के युग में इन कृषकों की सफलता व मार्गदर्शन अन्य किसानों के लिए प्रेरणादायक है। यह सर्वसम्मत है कि एक प्रेरित उद्यमी अर्थव्यवस्था के विकास को तीव्रता प्रदान करता है। कुशलता एवं ज्ञान ग्रामीण युवा में उद्यमशीलता के विकास हेतु अत्यंत आवश्यक है जो अर्थव्यवस्था के विकास एवं देश के सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है।

फूल चुन कर एकत्र करने के लिए मत ठहरो। आगे बढ़े चलो, तुम्हारे पथ में फूल निरंतर खिलते रहेंगे।

- रवींद्रनाथ ठाकुर

जैव संवर्धन एवं कुपोषण मुक्त भारत

मुरलीधर असकी, एच. के. दीक्षित, ज्ञान प्रकाश मिश्रा एवं रणबीर सिंह
धमेन्द्र सिंह, प्राची यादव, दिलीप कुमार एवं रणबीर सिंह

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

पोषक आहार हमारे जीवन के समुचित विकास एवं वृद्धि के लिए अति महत्वपूर्ण है। पोषक आहार एवं मानसिक स्थिरता के साथ-साथ हमारे शरीर के उपापचय को बनाए रखता है। इसके अतिरिक्त कई प्रकार की बीमारियों से भी हमारे शरीर की रक्षा करता है। भोजन के द्वारा हम उर्जा, वसा, विटामिन्स, प्रोटीन, प्रतिऑक्सीकारक एवं खनिज ग्रहण करते हैं जो कि उपापचय की क्रिया के लिए आवश्यक होती है। इनमें से अधिकांश का निर्माण हमारे शरीर में स्वयं नहीं होता है। अतः इनकी पूर्ति आहार के माध्यम से की जाती है। खाद्य भाग में विद्यमान पोषण विरोधी तत्वों का मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। असंतुलित भोजन ग्रहण करने से विश्व में करोड़ों मनुष्यों का जीवन प्रभावित होता है जो कि उन्हें बुरे स्वास्थ्य एवं सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों की ओर ले जाता है। वर्तमान में प्राथमिक रूप से बढ़ती आबादी का पेट भरने एवं जीवित रहने की दृष्टि से अधिक उपज देने वाली प्रजातियों के विकास का ही प्रयास रहा है। वर्तमान में हमारे देश में विभिन्न फसलों की 5600 से भी अधिक प्रजातियों का विकास किया जा चुका है। तथापि इनमें विशेष गुणवतायुक्त प्रजातियों की संख्या अत्यंत कम है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के नेतृत्व में धान्य, दलहन, तिलहन, फल एवं सब्जी की अधिक उपज वाली प्रजातियों की गुणवता में सुधार किया गया है। इन सभी जैव संवर्धित प्रजातियों का देश की पोषण सुरक्षा की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा निर्धारित "टिकाउ एवं लक्ष्य" वैश्विक समुदायों से खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित करने का आग्रह करते हैं। लगभग 2 अरब जनसंख्या अपोषित भोजन के कारण प्रभावित है तथा 76.5 करोड़ जनसंख्या कुपोषित है। विश्व की कुल जनसंख्या के 35 प्रतिशत गरीब लोग दक्षिण एशिया में रहते हैं तथा भारत की जनसंख्या के 21.9 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे है। विश्व के सबसे अधिक कुपोषित मनुष्यों का निवास भारत में है (19.46 करोड़)। भारत में 5 वर्ष से कम उम्र के 38.4 प्रतिशत बच्चों का कद एवं 35.7 प्रतिशत बच्चों का शारीरिक भार कम है। भारत में प्रति वर्ष विटामिन एवं खनिज की अल्पता के कारण जी.डी.पी. में 1.2 करोड़ अमरीकी डॉलर का नुकसान होता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से पोषण सुरक्षा को मुख्य धारा में लाना हमारे लिए अत्यंत आवश्यक है। अनुमानतः सुनिश्चित वितरण प्रणाली कार्यक्रम में निवेशित प्रत्येक डॉलर से लगभग 16 डॉलर का लाभ प्राप्त होता है। इस संदर्भ में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के नेतृत्व में कृषि अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रमों के माध्यम से फसलों में जैव संवर्धन की शुरुआत की गई है जो कि कुपोषण को दूर करने हेतु टिकाउ एवं प्रभावी उपाय है। वर्तमान में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के द्वारा विभिन्न फसलों में दर्जन भर से भी अधिक प्रजातियां विकसित की गई हैं जिन्हें भोजन श्रृंखला में सम्मिलित किया जा सकता है। जो हमारे मानव एवं पशुधन के अच्छे स्वास्थ्य में अत्यंत सहायक सिद्ध होगी। इसी दिशा में हाल ही में नीति आयोग, भारत सरकार की राष्ट्रीय पोषण नीति "कुपोषण मुक्त भारत" के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु जैव संवर्धित प्रजातियों को अधिक प्रभावी रूप से उपयोग में लाने हेतु प्रेरित करती है।

विगत कुछ वर्षों में भारतीय कृषि ने अत्यंत प्रभावशाली प्रगति की है एवं फसल उत्पादन की दिशा में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। किंतु उत्पादन के दौड़ में गुणवता सुधार को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया गया। जिसके कारण कुपोषण

की स्थिति उत्पन्न हुई। विशेष रूप से विकासशील एवं अविकसित देशों में कुपोषण अत्यंत खतरनाक समस्या के रूप में सामने आई है। हमारे देश की जनसंख्या का 1/5 भाग गरीबी रेखा से नीचे रहता है एवं 15 प्रतिशत जनसंख्या कुपोषित है। कुपोषित व्यक्ति अनेक प्रकार की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से घिरे रहते हैं। व्यावसायिक संवर्धन औषधि के द्वारा, आहार का विविधीकरण एवं जैव संवर्धन के माध्यम से पोषण पूर्ति की जा सकती है।

जैव संवर्धन की परिभाषाएं

1. पारंपरिक पौध प्रजनन एवं जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से पोषक तत्वों जैसे लौह एवं जिंक से परिपूर्ण फसल उत्पादों का विकास करना जैव संवर्धन कहलाता है।
2. फसलों की पोषण गुणवता में कृषि विज्ञान विधियों, पारंपरिक पौध प्रजनन अथवा आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से सुधार की जाने की प्रक्रिया जैव संवर्धन कहलाती है।
3. जैव संवर्धन, आर्थिक एवं पोषण सुरक्षा हेतु भोजन में आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे विटामिन, खनिज की आपूर्ति, पोषण की गुणवता में सुधार करने एवं स्वास्थ्य के लिए न्यूनतम जोखिम के साथ-साथ सार्वजनिक स्वास्थ्य लाभ प्रदान करने की प्रक्रिया होती है।
4. खाद्य प्रसंस्करण के समय भोजन में उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा में वृद्धि करने की प्रक्रिया संवर्धन के रूप में जानी जाती है।

जैव संवर्धन शब्द को सी.आई.ए.टी. कोलम्बिया के द्वारा जनवरी, 2001 में स्वीकार किया गया था जिसका आधार "बिल एंड मैलिंडा मैट्स फाउंडेशन" की अगुआई में आई.एम.आई. के प्रतिनिधियों के बैठक के दौरान सूक्ष्म पोषक संवर्धन के लिए फसल प्रजनन रणनीति है। भविष्य में जैव संवर्धन के द्वारा सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे; लौह युक्त बाजरा, प्रोटीन युक्त मक्का एवं धान तथा जिंक युक्त गेहूं की प्रजातियां विकसित की जाएंगी। प्रोटीन को पोषण की समस्या के निदान हेतु धान की फसल में हीरा नामक प्रजाति की पहचान की गई है। इस प्रजाति में प्रोटीन की मात्रा लगभग 12 प्रतिशत होती है। जबकि अन्य साधारण प्रजातियों में प्रोटीन की मात्रा केवल 8 प्रतिशत होती है। इसी क्रम में धान की प्रजाति 'सी.आर. धान 310' भी उत्तम है जिसमें प्रोटीन की मात्रा 10.3 प्रतिशत होती है। 'डी.आर.आर. धान 45' की पहचान उच्च जिंक वाली प्रजाति के रूप में की गई है एवं इसे प्रचलित भी किया जा रहा है। इस प्रजाति के पॉलिश चावल में 19.5 पी.पी.एम. जिंक की मात्रा उपस्थित होती है। फलों को अधिक पोषक बनाने की दिशा में हाल ही में 'मेंदिका' नामक अंगूर का विकास किया गया है। इस प्रजाति में प्रति ऑक्सीकारक की मात्रा अन्य प्रजातियों की तुलना में कई गुणा अधिक है। जो कि मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभदायक है। इसी प्रकार अंगूर की एक संकर किस्म 'अर्का किरण' का विकास किया गया है जिसमें लाइकोपिन नामक वर्णक (पिगमेंन्ट) की मात्रा सामान्य की तुलना में अधिक होती है। लाइकोपिन हृदयरोग एवं विभिन्न प्रकार के कैंसर से सुरक्षित रखता है। शकरकंद के पोषक तत्वों को ध्यान में रखकर इसके उत्पादन को बढ़ावा दिया जा रहा है एवं कई अन्य उन्नत प्रजातियों का विकास कार्य प्रगति पर है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के द्वारा वर्तमान में मानव को सुपोषित करने एवं स्वास्थ्य में सुधार करने हेतु उन्नत संवर्धित प्रजातियां:

गेहूं: 1) डब्ल्यू बी 2: इस प्रजाति में जिंक 42.0 पी.पी. एम. एवं लौह 40.0 पी.पी.एम. होता है।

2) एच.पी.बी.डब्ल्यू 1: इस प्रजाति में जिंक 40.0 पी. पी.एम. एवं लौह 40.0 पी.पी.एम. होता है।

बाजराः 1) एच.एच.बी. 299: इस प्रजाति में लौह 73.0 पी.पी.एम. एवं जिंक 41.0 पी.पी.एम. होता है।

2) एच.एच.बी. 1200: इस प्रजाति में लौह 72.0 पी. पी.एम. होता है।

मक्काः 1) पूसा एच.एम. 8 उन्नतः यह प्रजाति 1.06 प्रतिशत ट्रिप्टोफेन एवं 3.62 प्रतिशत लाइसिनयुक्त होती है।

2) पूसा एच.एम. 9 उन्नतः यह प्रजाति 0.68 प्रतिशत ट्रिप्टोफेन एवं 2.97 प्रतिशत लाइसिन युक्त होती है।

3) पूसा विवेक क्यू.पी.एम. 9 उन्नतः यह देश की प्रथम प्रोविटामिन युक्त प्रजाति है।

मसूरः 1) पूसा अगेती मसूर (एल 4717): इस प्रजाति में लौह की उपस्थिति 65.0 पी.पी.एम. होती है।

सरसों: 1) पूसा डबल जीरो मस्टर्ड 31: सरसों की इस प्रजाति में इरूसिक अम्ल 2 प्रतिशत से भी कम एवं बीज में 30 पी.पी.एम. से कम ग्लूको सायनोलेट होता है।

आलूः 1) भू सोनाः इस प्रजाति में उच्च बीटा कैरोटिन (14.0 मि.ग्रा./100 ग्रा.) होती है।

2) भू कृष्णाः इस प्रजाति में उच्च एन्थोसायनिन (14.0 मि.ग्रा./100 ग्रा.) होता है।

अनारः 1) सोलापुर लालः इस प्रजाति में उच्च लौह (5.6 - 6.1 मि.ग्रा./100 ग्रा.) एवं जिंक (0.64-0.69 मि.ग्रा./100 ग्रा.) होता है।

सारणी: जैव संवर्धित उन्नत

फसल	उन्नत किस्म	संस्तुत क्षेत्र	पकने की अवधि (दिन)	औसत उपज क्विं./है.	संवर्धित गुण
मक्का	पूसा एच एम 8 उन्नत (संकर किस्म)	खरीफ मौसम में, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना एवं तमिलनाडु	95	62-6	ट्रीप्टोफैन 1.06 प्रतिशत लाइसिन 4.18 प्रतिशत
	पूसा एच एम 9 उन्नत (संकर किस्म)	खरीफ मौसम में, बिहार, झारखंड, ओड़िशा, उत्तर प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल	89	52-0	ट्रीप्टोफैन 0.68 प्रतिशत लाइसिन 2.97 प्रतिशत
	पूसा विवेक क्यूपीएम 9 उन्नत (संकर किस्म)	जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, उत्तर पूर्वी राज्यों, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तेलंगाना एवं तमिलनाडु	93 (उत्तर पहाड़ी क्षेत्र) 83 (उत्तर दक्षिणी प्रायद्वीप क्षेत्र)	55-9 59-9	प्रोविटामिन ए 8.15 पीपीएम लाइसिन 2.6 प्रतिशत ट्रीप्टोफैन 0.74 प्रतिशत
	पूसा एच एम 4 उन्नत (संकर किस्म)	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, खरीफ मौसम में	87	64-2	ट्रीप्टोफैन 0.91 प्रतिशत लाइसिन 3.62 प्रतिशत
गेहूं	डब्ल्यू बी 02	पंजाब, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, पश्चिमी उ.प्र., जम्मू व कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखंड के तराई क्षेत्र	142	51-6	उच्च जिंक (42.0 पीपीएम) एवं आयरन (40.0 पीपीएम)
	एच.पी.बी. डब्ल्यू 01	पंजाब, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, पश्चिमी उ.प्र., जम्मू व कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखंड के तराई क्षेत्र	141	51-7	आयरन (40.0 पी.पी. एम.) जिंक (40.6 पी.पी.एम.)

धान	सी.आर.धान 310	ओडिशा, मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश	125	45-0	प्रोटीन 10.3 प्रतिशत
	डी.आर.आर.धान 45	कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना	125-130	50	जिंक (22.6 पी.पी.एम.)
मसूर	पूसा अगेती मसूर	उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़	13	100	आयरन 65.0 पीपीएम
सरसों	पूसा सरसों 300	उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान	137	18.2 37.7 प्रतिशत (तेल की मात्रा)	ईरूसिक अम्ल >2.0 प्रतिशत
	पूसा 0031	राजस्थान (उत्तर तथा पश्चिमी क्षेत्र), पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी, उत्तर प्रदेश, जम्मू और कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश	142	41.0 प्रतिशत (तेल की मात्रा)	ईरूसिक अम्ल 2.0 प्रतिशत ग्लूकोसिनोलेटढ 3.0 प्रतिशत
शकरकंद	भू-सोना	ओडिशा		19.8 टन/है.	सूखा पदार्थ 27-29 प्रतिशत स्टार्च 20.0 प्रतिशत शर्करा 2.0-2.4 प्रतिशत बिटा कैरोटीन 14 मि. ग्रा./ 100 ग्रा.
	भू-कृष्णा	ओडिशा		18.0 टन/है.	सूखा पदार्थ 24-25 प्रतिशत स्टार्च 19.5 प्रतिशत शर्करा 1.9-2.2 प्रतिशत एन्थोसायनिन 90.0 मि.ग्रा./ 100 ग्रा.
फूलगोभी	पूसा बिटा केसरी 1	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली		40–50 टन/ है.	बिटा कैरोटीन (8.0–10.0 पीपीएम)
बाजरा	एच.एच.बी. 299 (संकर किस्म)	खरीफ मौसम में, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, दिल्ली, महाराष्ट्र एवं तमिलनाडु	81	32.7 73.0 (शुष्क चारा)	आयरन 73.0 पीपीएम जिंक 41.0 पीपीएम
	ए.एच.बी 1200 (संकर किस्म)	खरीफ मौसम में, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, दिल्ली, महाराष्ट्र एवं तमिलनाडु	78	32.0 70.0 (शुष्क चारा)	आयरन 73.0 पीपीएम

अनार	सोलापुर लाल	अर्धशुष्कीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त		23–27 टन/ है.	आयरन 5.6–6.1 मि.ग्रा./100 ग्रा., जिंक 0.64–0.69 मि.ग्रा./ 100 ग्रा., विटामिन सी 19.4–19.8 मि.ग्रा./ 100 ग्रा.

जैव संवर्धन पौधों में प्रजनन परजीवी तकनीकियों या सस्य विज्ञान के माध्यम से फसलों में खनिजों और विटामिन को बढ़ाने का माध्यम है। जैव संवर्धित फसलें मानव स्वास्थ्य और पोषण में सुधार ला सकती है। जैव संवर्धन मुख्य खाद फसलों में सूक्ष्म पोषक तत्वों को बढ़ाने के लिए तुलनात्मक रूप से लागत प्रभावी और दीर्घकालिक साधन है। इसके द्वारा कुपोषित जनसंख्या जिसके पास खाद्य पदार्थों और पूरक आहार के सीमित स्रोत है, तब व्यावहरिक समाधान प्रदान किया जा सकता है।

समय परिवर्तन का धन है। परंतु घड़ी उसे केवल परिवर्तन के रूप में दिखाती है, धन के रूप में नहीं।

- रवींद्रनाथ ठाकुर

आपका कोई भी काम महत्वहीन हो सकता है पर महत्वपूर्ण यह है कि आप कुछ करें।

- महात्मा गांधी

दोगुनी आमदनी का स्रोतः केंचुआ खाद (वर्मीकंपोस्ट)

शिवाधार मिश्र एवं रणबीर सिंह

जैव पदार्थ उपयोग इकाई-सस्यविज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

मृदा में मुख्यतः नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश तत्व होते हैं, जिससे मृदा में उर्वरता क्षमता बनी रहती है। किसानों की आय व मृदा की उर्वरता क्षमता बढ़ाने हेतु कृषि विभागों द्वारा लगातार प्रयास किए जा रहे हैं। आधुनिक कृषि में प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक पैदावार लेने की देखा-देखी में अनियंत्रित एवं अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग कर रहे हैं, जिससे मृदा की रासायनिक, भौतिक तथा जैविक संरचना तो बिगड़ ही रही है साथ ही कृषि उत्पादन में भी ठहराव सा आ गया है। इन रसायनों के अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो रहे हैं इसके साथ-साथ हमारे कृषि उत्पाद, जल एवं मृदा भी विषैली हो रही है। इसी परेशानी को दूर करने के लिए विभिन्न कृषि विभागों द्वारा वर्मीकंपोस्ट को बढ़ावा दिया जा रहा है। किसानों को इसके लाभ से अवगत कराया जा रहा है। यदि किसानों को कम लागत में अधिक लाभ प्राप्त करना है तो वे वर्मी कंपोस्ट का उपयोग अवश्य करें। वर्तमान में जैविक खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग को देखते हुए जैविक खेती में केंचुआ खाद की महता काफी बढ़ गई है।

केंचुआ फसलों के अपशिष्ट, गोबर, कूड़ा-कचरा, व्यर्थ शाक-सब्जियों, घास-फूस, फल-फूल इत्यादि पदार्थों को खाकर तथा उत्सर्जन कर उत्कृष्ट कोटी की खाद बना देते हैं जिसे वर्मीकंपोस्ट कहते हैं। वर्मी कंपोस्ट को आम भाषा में केंचुआ खाद भी कहते हैं। यह पोषक तत्वों से भरपूर एक उत्तम जैविक खाद है। जिसमें सामान्य मृदा की अपेक्षा 5 गुना नाइट्रोजन, 7 गुना फॉस्फोरस, 11 गुना पोटाश, 2 गुना कैल्शियम तथा मैग्नीशियम और 8 गुना एक्टिनोइसिटीज (उपयोगी जीवाणु) पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ विभिन्न पादप वृद्धि हार्मोन (ऑक्सिन साइटोकाइनिन), एंजाइम (प्रोटियेज, लाइपेज व सेलुलोज), विटामिन, खनिज लवण तथा एंटीबायेटिक्स भी पाए जाते हैं जो पौधों के लिए बहुत लाभदायक होते हैं। केंचुआ खाद

दिखने में हल्का काला और दानेदार होता है। वर्मी कंपोस्ट में स्थानीय केंचुओं का प्रयोग करना अच्छा होता है। केंचुआ खाद की 2 टन मात्रा वर्मीकंपोस्ट का प्रयोग करने से मिट्टी की उर्वराशक्ति बढ़ती है जिससे फसलों की पैदावार बढ़ती है। इसकी खाद से मिट्टी का कटाव कम होता है, जलधारण क्षमता बढ़ती है और खरपतवार व रोगों का कम प्रकोप होता है। इसको खेत में, फसलों में, पार्कों में और गमलों में प्रयोग किया जा सकता है। इसको पैकेट में भी पैक करके बेचा जा सकता है। अतः केंचुआ खाद से हम कृषि को अधिक टिकाऊ, सुदृढ़ एवं लाभकारी बना सकते हैं जिससे हमारे किसान भाई अधिक समृद्ध होंगे।

किसानों का मित्र है केंचुआ

केंचुआ किसानों एवं खेती के लिए प्राकृतिक हितेषी मित्र है तथा इसके मल को वर्मीकंपोस्ट कहते हैं। सर्वप्रथम डार्विन ने कहा था कि केंचुए कुदरती हलवाई होते हैं। इसी प्रकार अरस्तु ने केंचुओं को भूमि की आंत का स्थान दिया था। ये भूमि को अंदर ही अंदर भुरभुरा बनाते रहते हैं। एक स्वस्थ कृषि भूमि में एक वर्गफुट में 4 से 8 केंचुए मिल जाते हैं। एक केंचुआ प्रतिदिन 25 से 100 बार भूमि की परत में ऊपर-नीचे चलकर भूमि की संरंध्रता को बढ़ाता है। कृषि में आइसीनिया फोटिडा केंचुआ का अधिकांश प्रयोग किया जाता है। वर्मीकंपोस्ट तैयार करने

के लिए फसल अवशेष एवं घास-फूंस, कूड़ा-कचरा आदि को प्रयोग करके इस जाति को उसमें छोड़ दिया जाता है, जो फसल अवशेषों को खाकर वर्मीकंपोस्ट तैयार करते हैं एवं अपनी संख्या बढ़ा देते हैं। वर्मीकंपोस्ट खाद अन्य कार्बनिक खादों से सस्ती एवं टिकाऊ होती है क्योंकि इसमें पोषक तत्व पौधों के लिए अधिक मात्रा में होते हैं। आज जैविक खेती में वर्मीकंपोस्ट का प्रयोग अति आवश्यक हो गया है।

केंचुआ का परिचय

केंचुआ एनिलिडा वर्ग का रात्रिचर जीव है। यह अंधेरे व रात्रि में अधिक क्रियाशील रहता है। प्राचीन काल से ही मृदा में पाए जाने वाले जीवों में केंचुआ सबसे प्रमुख लाभदायक है। ये वर्षा मौसम में खेतों व बाग-बगीचों में वर्षा के बाद भूमि तथा जल में से निकलकर भूमि पर रेंगते हुए दिखाई देते हैं।

केंचुआ जीव मृदा में अधिक गहराई में बिल बनाकर धरातल पर ही रहकर मृदा तथा इसमें उपस्थित जीवांश

पदार्थ को खाकर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। इनको मुख के द्वारा खाने के बाद ये अपनी पाचन नली में उपस्थित चक्की या गिजार्ड में बड़ी अच्छी प्रकार से पिसाई करते हैं। बाद में इन्हें कैल्शियम तत्व से सुपोषित व लेपित करके छोटी-छोटी विभिन्न आकार की गोलियों के रूप में मलद्वार के रास्ते बाहर निकाल देते हैं। यही उदासीन पी.एच. मान वाली गोलियां मृदा में उर्वरा-शक्ति बढ़ाती रहती हैं। एक साधारण केंचुआ एक दिन में लगभग 15 बिल बना सकता है। बिलों के मुंह पर गोलियां छोड़ने तथा प्राण वायु ऑक्सीजन लेने के लिए ये भूमि की सतह पर आ जाते हैं और नए स्थान से भूमि में अंदर प्रवेश करते हैं। इन बिलों के कारण ही मृदा में वायुसंचार, जलग्रहण, जलधारण क्षमता तथा जल निकास बढ़ता है। दोमट व रेतीली दोमट मृदा में 18-33 सें.ग्रे. तापमान, 30-40 प्रतिशत नमी व जीवांश की प्रचुर मात्रा होने पर क्रियाशील होते हैं। साधारणतया यह 10 वर्षों तक जीवित रहता है परंतु इसकी प्रजनन क्षमता 2 से 2.5 वर्ष तक ही रहती है। 6 माह बाद इससे कोकून प्राप्त होने लगता है। एक कोकून से 2 से 3 सप्ताह में एक जोड़े केचुएं से लगभग 100 कोकुन प्राप्त किए जा सकते हैं। वैज्ञानिक डार्विन के अनुसार प्रति वर्ष किसी भी उपजाऊ मृदा की ऊपरी आधा इंच मृदा का निर्माण केंचुओं द्वारा ही होता है।

केंचुओं के मुख्य गुण

- केंचुए सड़ने, गलने व तोड़ने की प्रक्रिया को बढ़ाने में सहायक होते हैं।
- मृदा में वायु संचार के प्रवाह को बढ़ाने में सहायक हैं।
- जैव क्षतिशील व्यर्थ कार्बनिक पदार्थों का विखंडन व विघटन कर उन्हें कंपोस्ट में बदल देते हैं।

वर्मीकंपोस्ट एवं वर्मीकंपोस्टिंग

केंचुओं द्वारा कार्बनिक पदार्थ के विघटन के फलस्वरूप तैयार उत्पाद को जीवाश्म की संज्ञा दी जाती है, जिसका पुनः विघटन न हो सके, उस पदार्थ को वर्मी कंपोस्ट कहते हैं। केंचुए कार्बनिक अवशिष्ट पदार्थों जैसे; भूसा, सूखी घास, जलकुंभी, सब्जियों, फलों के छिलके, पेठे का

अशिष्ट इत्यादि को खाते है। यह कार्बनिक पदार्थ केंचुओं के पाचन तंत्र से होता हुआ जटिल जैव रासायनिक प्रक्रियाओं से गुजरता है। एक महक वाली सूक्ष्म गोलिकाओं के रूप में बाहर जो पदार्थ निकलता है, वह द्वारा वर्मीकास्ट कहलाता है अथवा वैज्ञानिक विधि द्वारा केंचुओं को नियंत्रित दशाओं में प्रजनन एवं पालन, वर्मी कल्चर कहलाता है। केंचुओं की सहायता से अपघटनशील जीवांश पदार्थ एवं विसर्जित पदार्थ से खाना बनाना वर्मी कंपोस्ट कहलाता है। साधारण भाषा में केंचुए की विष्ठा को ही वर्मीकंपोस्ट कहते हैं। इस प्रक्रिया में केंचुओं से विसर्जित पदार्थ वर्मीकंपोस्ट से जो खाद बनती है उसे ही वर्मीकंपोस्ट कहते हैं। इसे वैज्ञानिक प्रबंधन द्वारा अच्छी गुणवता वाली कंपोस्ट खाद में परिवर्तित किया जा सकता है। वर्मीकंपोस्ट में पैरीट्रोपिक झिल्ली होती है, जो चिपचिपा होने के कारण मृदाकणों से चिपक जाती है। यह मृदा से वाष्पीकरण की दर को कम कर देती है, जिससे मृदा में नमी की कमी नहीं होती है। वर्मीकंपोस्ट पौधों की आवश्यकतानुसार सभी जैविक पदार्थ होते हैं जिससे मृदा की उर्वरा-शक्ति बढ़ती है। यह शुष्क क्षेत्रों के लिए अधिक उपयोगी हो जाती है। कृषि विश्वविद्यालय, बेंगलुरू तथा सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली में हुए पोषक तत्वों के परीक्षण के आधार पर वर्मीकंपोस्ट में पोषक तत्वों की निम्नलिखित मात्राओं को सारणी 1 एवं सारणी 2 में दर्शाया गया हैः

सारणी 1. वर्मीकंपोस्ट खाद में विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा

तत्वों का नाम	उपलब्ध मात्रा
ऑर्गेनिक कार्बन	9.15-17.98
कुल नाइट्रोजन	0.5-1.5
पोटैशियम	0.1-0.3
सोडियम	0.6-0.03
कैल्शियम व मैग्नीशियम	22.67-70.0 (एमईक्यू)/100 ग्राम
कॉपर	2-9.5 पीपीएम
आयरन	2-9.3 पीपीएम
जिंक	5.7-11.5 पीपीएम
सल्फर	128.0-548.0 पीपीएम

स्रोतः काले, 1993 के सौजन्य से

सारणी 2. वर्मीकंपोस्ट में उपस्थित पोषक तत्व

तत्वों का नाम	उपलब्ध मात्रा
नाइट्रोजन	0.63-0.92 प्रतिशत
फॉस्फोरस	0.59-0.67 प्रतिशत
पोटैशियम	0.30-0.75 प्रतिशत
जिंक	75.0-223 पी.पी.एम.
कॉपर	7.3-24.3 पी.पी.एम.
मैंगनीज	82-219 पी.पी.एम
आयरन	2062-9683 पी.पी.एम.

स्रोतः वर्मी कंपोस्ट बनाने की विधि द्वारा डॉ. शिवाधार

वर्मीकंपोस्ट बनाने के विभिन्न विकल्प

वर्मीकंपोस्ट बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की बेड प्रयोग की जाती है। जैसेः टूटी हुई पानी की टंकी, प्लास्टिक की वर्मीबेड, सीमेंट की पतली व लंबी हौदी, खुली इंटों से बनी क्यारी, पेड़ की छांव में लंबाई में ढेर बनाकर, गमला तथा वाशबेसिन इत्यादि।

चित्रः केंचुआ खाद तैयारी हेतु बेड पद्धति

वर्मीकंपोस्ट हेतु केंचुओं की उपयुक्त प्रजातियां

वर्मीकंपोस्ट के लिए केंचुए की कई प्रजातियां हैं जिनसे वर्मीकंपोस्ट आसानी से बनाया जा सकता है।

जैसे; आइसीनिया फोटिडा, यूड्रिलस यूजीनिया तथा पेरियोनिक्स एक्सकेवेटस इत्यादि। इनमें से आइसीनिया फोटिडा का हमारे देश में वर्मीकंपोस्ट बनाने के लिए बहुत काम में लाया जाता है। यह केंचुआ कम समय में अपनी संख्या बढ़ाता है तथा इस पर तापमान कम अधिक होने से विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है।

वर्मीकंपोस्ट बनाने के लिए स्थान का चयन

वर्मीकंपोस्ट बनाने के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करें जहां पर जलभराव की स्थिति न हो तथा छायादार स्थान हो। यदि छाया न हो तो घास का एक छप्पर बनाना चाहिए। शेड का आकार उपलब्ध गोबर व बैड की संख्या पर निर्भर करता है। गांव में शेड लकड़ी का, बांस एवं घास से तैयार किया जा सकता है।

केंचुआ खाद बनाने के लिए उचित समय

सामान्यतः केंचुआ खाद वर्ष भर बना सकते हैं, लेकिन अधिकतम 16 से 22 डिग्री सेंटीग्रेड तापक्रम पर केंचुए अधिक क्रियाशील होते हैं।

वर्मीकंपोस्ट बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

1. गोबर की खाद व घास-फूंस की मात्राः 100 कि.ग्रा.
2. केंचुआ : 1/2 कि.ग्रा. केंचुआ प्रति वर्ग फुट।
3. जल की मात्रा : मौसम व आवश्यकतानुसार।

वर्मीकंपोस्ट खाद बनाने के लिए गोबर पहले से एकत्रित किया हुआ होना चाहिए, जिससे उसमें मीथेन गैस न रहे। गोबर के साथ घास-फूंस को भी पूर्व में ही थोड़ा सड़ा हुआ ही मिलाएं, तो बेहतर होगा। क्योंकि बिना सड़ा हुआ घास-पात व कूड़ा-कचरा गोबर के साथ मिलाते हैं, तो इसमें गर्मी पैदा होती है। यदि एक भाग वनस्पति अवशेष, घास, पौधों की पत्तियां एवं तीन भाग गोबर को मिलाकर बनाया जाए तो सबसे अच्छे परिणाम मिलते हैं।

वर्मीकंपोस्ट हेतु कच्चे माल का पूर्व उपचार

- वर्मीकंपोस्ट बनाए जाने वाले कचरे में से अजैविक पदार्थ जैसे; प्लास्टिक, कांच, चीनी मिट्टी के टुकड़े, धातु के टुकड़ों को छांटकर अलग निकाल दें।
- छंटाई किए कचरे या अवशेष को काटकर छोटे-छोटे टुकड़ों में बदल दें और तेज धूप में 1 से 2 दिन सूखने दें।
- यदि कचरे में कीट प्रकोप अधिक है तो 4 प्रतिशत जलीय नीम कीटनाशक के प्रयोग से कीट नियंत्रण करें।

सस्यविज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली, के जैव पदार्थ उपयोग इकाई में केंचुआ खाद बनाने की सस्ती तथा आसान विधि निम्नलिखित हैः

1. वर्मीकंपोस्ट को किसी भी प्रकार के पात्र जैसे; मिट्टी के बर्तन, वाशबेसिन, लकड़ी के बक्से इत्यादि में बनाया जा सकता है। इस प्रक्रिया का भूमि में गड्ढे (पिट) बना कर या क्यारी (कंपोस्टिंग बेड) बना कर भी किया जा सकता है। गड्ढे या क्यारी की चौड़ाई 1.0 मीटर तक रखें तथा लंबाई स्थान की उपलब्धता के अनुसार निर्धारित करें।
2. पिट या क्यारी की प्रथम सतह 4 से 5 सें.मी. बारीक बालू को बिछाकर बनाएं। इसके ऊपर समान मोटाई की दूसरी सतह किसी भी विघटनशील पदार्थ जैसे पत्ती या भूसा से बनाएं। इसके ऊपर जिन वनस्पति पदार्थ से आप कंपोस्ट बनाना चाहते हैं उसे छोटे-छोटे टुकड़ों (2 से 3 सें.मी.) के काटकर गोबर में मिलाकर (1:3 अनुपात में) बिछा दें। इस सतह की ऊंचाई 10

चित्रः पूसा केंचुआ खाद बनाने की विधि

से 15 सें.मी. तक रखी जा सकती हैं। इस माध्यम को आंशिक रूप से गलने के बाद डालने से कंपोस्ट बनना तीव्र होता है।

3. इसके पश्चात् उपर्युक्त पिट या बेड पर एक हजार केंचुए प्रति वर्ग मीटर की दर से ऊपरी सतह पर छोड़ दे तथा बोरी या टाट या भूसे से ढक दें।

4. इन बोरियों, घास या भूसे पर पानी छिड़कते रहें ताकि नमी का स्तर 40 से 60 प्रतिशत तक बना रहे।

5. संपूर्ण जैव पदार्थों जैसे; गोबर, खाद्यान्न व दलहनी फसलों के अवशेष, फल व सब्जियों के अवशेष इत्यादि को वर्मीकंपोस्ट बनाने में सामान्यतः 50 से 60 दिनों का समय लगता है। सर्दियों में यह समय कुछ बढ़ भी सकता है। वर्मी कंपोस्ट बनाने में लगने वाला समय कार्बनिक पदार्थों की प्रकृति पर भी निर्भर करता है। केवल गोबर की खाद का प्रयोग करने पर वर्मीकंपोस्ट 45 से 50 दिनों में ही तैयार हो जाता है। एक कि.ग्रा. रेडवर्म (आइसेनिया फोटिडा) से प्रतिदिन एक कि.ग्रा. वर्मीकंपोस्ट तैयार हो जाता है।

6. सूखे वर्मीकंपोस्ट को छायादार स्थान पर एकत्र करके इसे 2 मि.मी. की छलनी से छानकर बोरों में भर लें। बचे हुए केंचुओं, उनके शिशु केंचुए तथा अंडों को कच्चे गोबर के ढेर में डाल दें, जिससे वर्मीकंपोस्ट बनाने का क्रम निरंतर जारी रहे।

7. वर्मीकंपोस्ट को बोरों में भरकर पॉलीथीन में पैक करके ठंडे छायादार स्थान पर रखें, जिससे इसमें 20 से 25 प्रतिशत नमी बनी रहे। अब 10 दिनों के उपरांत इस वर्मीकंपोस्ट को दोबारा भी छलनी से छान सकते हैं, ताकि जो वर्म अंडे से शिशु बन गए हैं, वे भी निकाले जा सकते हैं।

वर्मीकंपोस्ट को एकत्र तथा संग्रह करना

जब वर्मीकंपोस्ट तैयार हो जाए तो उसकी सतह भुरभुरी, दानेदार तथा देखने में उबली चाय की पत्ती जैसी प्रतीत होती है। एकत्र करने में 3 से 4 दिन पहले पानी देना बंद कर दें। हाथ से ऊपरी सतह का खुरच कर छोटे-छोटे ढेर बना लें। इसको हल्का सूखने पर एकत्र करें।

पूसा संस्थान द्वारा विकसित विधि के अनुसार 3 से 4 दिन पानी देना बंद करने के बाद बेड या क्यारी को दो भागों में विभाजित कर लें। पहले भाग की वर्मीकंपोस्ट को 10 से 15 सें.मी. खुरच कर दूसरे भाग पर रख दें तथा खाली हुए स्थान को 10 से 15 दिन पुराने गोबर से भर दें। ऐसा करने से तैयार वर्मीकंपोस्ट से केंचुए नए डाले हुए गोबर में चले जाएगे। तैयार खाद को अलग कर लें। यह प्रक्रिया बार-बार दोहराएं। इस विधि द्वारा तैयार खाद से केंचुए एकत्र करने में कम परिश्रम करना पडेगा।

कंपोस्ट को छायादार स्थान में सुखाकर 2.5 मि.मी. की छलनी से छान कर पॉलीथीन या एच.डी.पी.ई. के बोरों में भर दें।

सारणी 3. गोबर की खाद व वर्मीकंपोस्ट में उपलब्ध पोषक तत्व(प्रतिशत)

क्रमांक	तत्व	गोबर की खाद	वर्मीकंपोस्ट
1.	कार्बन	3.0	20
2.	नाइट्रोजन	0.6	1.5
3.	कार्बन/नाइट्रोजन अनुपात	44	13
4.	फॉस्फोरस	0.2	1.5-1.75
5.	पोटैशियम	0.5	0.10
6.	गंधक	0.4	0.80
7.	कैल्शियम	0.20	1.03
8.	मैग्निशियम	0.20	0.23
9.	तांबा	25	46
10.	जिंक	80	100
11.	मैंगनीज	149	189

स्रोतः हैण्डबुक ऑफ मेन्योर्स एंड फर्टिलाइजर्स

वर्मीकंपोस्ट बनाते समय सावधानियां

- केंचुआ अंधेरा एवं नमी पसंद करने वाला जीव है, अतः उसे छांव में रखें।

- केंचुओं के बेड पर सूर्य की सीधी किरणें नहीं पड़नी चाहिए।
- ताजी गोबर, घास, आदि का प्रयोग नहीं करें। यह सामग्री थोड़ी सड़ी होनी चाहिए, क्योंकि ताजी गोबर होने से केंचुए चिपककर मर जाते हैं।
- खुशबू वाली पत्तियों या पदार्थ जैसे; नींबू वर्गीय पौधे, फल, छिलके तथा यूकेलिप्टस की पत्तियां इत्यादि का प्रयोग न करें।
- केंचुआ के भोजन में पत्थर, कंकड़, कांच व खुरदरे पदार्थ नहीं होने चाहिए।
- केंचुए को धीरे-धीरे बेड के ऊपर डालना चाहिए जिससे वे कुछ देर में नीचे चले जाएं।
- बेड में उचित नमी की मात्रा बनाए रखें, नमी का प्रतिशत कम से कम 40 से 50 होना चाहिए।
- वर्मीकंपोस्ट क्यारी या बेड में लवणीय जल का प्रयोग न करें।
- वर्मीकंपोस्ट तैयार खाद को ढेर से निकालने के लिए पूरे बेड में 2 से 3 स्थान पर ढेरी बनाकर 30 मिनट तक उसी स्थिति में रहने दें ताकि केंचुए नीचे चले जाएं।
- वर्मीकंपोस्ट निकालते समय ध्यान रखें कि खाद में केंचुओं के बच्चे व ककून न जाने पाएं और मोर, नेवला, चींटी, चूहा, मुर्गी व दीमक आदि से केंचुओं का बचाव करना चाहिए।
- दीमक से बचाव हेतु 4 प्रतिशत नीम के कीटनाशक घोल का प्रयोग करें अथवा 500 ग्राम निंबोली को रातभर जल में भिगोकर बारीक पीसकर एक लीटर जल में घोलकर छिड़काव करें।
- वर्मीकंपोस्ट के गड्ढों में साबुन, दवाइयां या किसी प्रकार के रसायनयुक्त जल का प्रवेश न होने दें।

वर्मीकंपोस्ट का उपयोग

बीज की बुवाई, खेत की तैयारी के समय एवं गमलें में गोबर खाद की तुलना में कम मात्रा में डालें। खाद का मिश्रण छायादार स्थान में पक्के फर्श या प्लास्टिक शीट पर करें। बिना मिट्टी अथवा अन्य कंपोस्ट का प्रयोग करना उचित नहीं है। खेतों-बगीचों में दोपहर के बाद केंचुआ खाद का प्रयोग करें।

चित्र. तैयार वर्मीकंपोस्ट की पैकिंग

वर्मीकंपोस्ट की प्रयोग मात्रा

- भूमि में जब नमी हो उस समय वर्मीकंपोस्ट को छिड़क कर भूमि में मिला दें तथा प्रतिवर्ष प्रति हेक्टेयर 2 से 4 टन खाद दें।
- वर्मीकंपोस्ट कपास, सोयाबीन, मक्का, ज्वार इत्यादि फसलों में प्रथम 5, द्वितीय 2.5 एवं तृतीय वर्ष 1.5 टन प्रति हेक्टेयर तथा बागवानी फसलों में 3 टन प्रति हेक्टेयर मिला देना चाहिए। फलदार वृक्षों में 1 से 10 कि.ग्रा. वृक्ष की आयु व आकार के अनुसार तने के चारों और घेरा बनाकर प्रयोग करें।
- सब्जी वाली फसलों के लिए 8 से 10 टन/हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।
- गमलों में प्रति गमला 100 से 200 ग्राम वर्मीकंपोस्ट देना चाहिए।

वर्मीकंपोस्ट के लाभ

- वर्मीकंपोस्ट पेड़-पौधों, फलदार वृक्षों, सब्जियों एव सभी प्रकार की फसलों के लिए एक संपूर्ण एवं संतुलित आहार है। विभिन्न अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि फसल उत्पादन में वर्मीकंपोस्ट के प्रयोग से 1.25 तथा गुलाब बागवानी की पैदावार में 4 गुना तक वृद्धि हुई है।
- वर्मीकंपोस्ट में सूक्ष्म-जीव, एंजाइम, विटामिन

और वृद्धि वर्धक हारमोन्स पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

- वर्मीकंपोस्ट के उपयोग से भूमि की उर्वरा-शक्ति में वृद्धि होती है। भूमि कटाव कम होता है। जल धारण क्षमता में सुधार होता है। पौधों तथा मिट्टी के मित्र जीवों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता है तथा किसानों को रासायनिक उर्वरकों एवं पीड़कनाशियों पर व्यय कम करना पड़ता है।
- मृदा में कार्बनिक पदार्थ तथा नाइट्रोजन की वृद्धि होती है। मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक प्रक्रियाएं तीव्र गति से होती हैं।
- पौधों में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है जिससे कीट व बीमारियों का प्रकोप कम होता है।
- रासायनिक उर्वरकों की निर्भरता में कमी जो अधिक लागत एवं वातावरण को प्रभावित करते हैं।
- भूमि संरचना तथा जुताई में सुधार के साथ ही भूमि क्षारीय होने से बचाने में सहायक होता है।
- खाद ढेर एवं पशु के मल-मूत्र से होने वाले प्रदूषण में कमी अर्थात पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने में सहायक है।
- भूमि में सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है जिससे पौधों को पोषक तत्व आसानी से प्राप्त होते हैं।
- वर्मीकंपोस्ट सामान्य कंपोस्टिंग प्रक्रिया की अपेक्षा एक तिहाई समय में ही तैयार हो जाती है।
- वर्मीकंपोस्टिंग द्वारा सब प्रकार के जैव विघटनशील कार्बनिक व्यर्थ पदार्थों के अपघटन से जैविक खाद बनाई जाती है।
- शहर के आसपास रहने वाले ग्रामीण युवाओं तथा महिलाओं के लिए यह आय का स्रोत बन सकता है। वर्मी कंपोस्ट के साथ जैव उर्वरकों एवं जैव-फफूंद का खेतों में प्रयोग भी बहुत आसान होता है।

केंचुआ खाद पोषण पदार्थों से भरपूर एक उतम जैविक खाद है। केंचुआ खाद वनस्पतियों एवं भोजन के अवशेषों आदि को विघटित करके बनाई जाती है। इस खाद से न तो दुर्गंध आती है और न ही मक्खी एवं मच्छर बढ़ते हैं, साथ ही वातावरण भी प्रदूषित नहीं होता। यह खाद 2 से 3 महीनों में तैयार हो जाती है और यह प्रयोग में लाई जाने वाली चाय की पत्ती के रंग में बदल जाती है। केंचुआ खाद मृदा में मिलाने से मृदा की उर्वरा-शक्ति तो बढ़ती ही है, साथ ही साथ फसलों की पैदावार व गुणवता में भी वृद्धि होती है। दो गड्ढ़ों से लगभग 1 टन खाद प्राप्त हो जाती है। वर्मीकंपोस्ट को किसान एवं युवा अपनी खेती को टिकाऊ बनाने व स्वरोजगार के लिए अपना सकते हैं।

अनुराग, यौवन, रूप या धन से उत्पन्न नहीं होता। अनुराग, अनुराग से उत्पन्न होता है।
- प्रेमचंद

एक साधारण फल मक्खी (ड्रोसोफिला) के अध्ययन की कहानी जो बनी आनुवंशिकी विज्ञान का आधार

प्राची यादव एवं बी. सुनीता

आनुवंशिकी संभाग

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

"हम कौन है? हम इस पृथ्वी पर कैसे आए? और वैज्ञानिक तौर पर मानव होने का क्या अर्थ है?

मानव विरासत की पहचान और उत्पत्ति के बारे में ये प्रश्न हमें सोचने पर मजबूर करते हैं कि कौन से आनुवंशिकी तत्व हमें मनुष्य बनाते है। हमें आनुवंशिकी तत्व हमारे पूर्वजों से कैसे प्राप्त होते है? क्या समय के साथ इन आनुवंशिकी तत्वों में परिवर्तन होता है? क्या मानव जाति का विकास पृथ्वी के जीवन विकास प्रक्रिया का एक बड़ा हिस्सा है? डी.एन.ए. संरचना और अनुक्रम समझने के कारण आज हमारे पास इनमें से कुछ सवालों के जवाब है। डी.एन.ए. की संरचना, उसकी अधिकाधिक विश्वसनीय द्विगुणन आवृत्ती प्रक्रिया (रेप्लीकेशन) और अगली पीढ़ी में इस संचरण का वंशानुगत होना ही हमारे आनुवंशिकी प्रक्रिया को गतिमान करता है। किंतु डी. एन.ए. की द्विगुणन आवृत्ती प्रक्रिया के दौरान उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) होते है, जिनके वंशानुक्रम में पारित होने के कारण नए विशेष गुणधर्मों का विकास जीवों में हो पाता है। हज़ारो वर्षों तक डी.एन.ए. उत्परिवर्तन गुणसूत्रों में जमा होते हैं और हम उनके प्रभावों को जीवों के बीच के अंतर के रूप में देखते हैं। इसी प्रकार एक नई प्रजाती की उत्पत्ती होती है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में, चार्ल्स डार्विन और अलफ्रेड वॉलेस ने प्रजातियों के उत्क्रांती का सिद्धांत दिया था। इस सिद्धांत के अनुसार आनुवंशिक भिन्नता, प्रजातियों के लिए समय और वातावरण के साथ बदलना और विकसित होना संभव बनाती है। सभी जीवों की उत्पत्ति एक उभयनिष्ठ वंशज से हुई है। हालांकि जब इन विचारों को प्रस्तावित किया गया था तब मेंडल का काम प्रकाशित नहीं हुआ था और ना ही उस समय आनुवंशिक विज्ञान का जन्म हुआ था। बीसवीं शताब्दी में जब मेंडल का फील्ड पी का अध्ययन सामने आया तब विज्ञान ने एक नए दौर में कदम रखा और जन्म हुआ आनुवंशिकी शास्त्र का।

मेंडलिज़्म की खोज को प्रतिबिंबित करने के लिए विलियम बैट्सन ने "जेनेटिक्स" शब्द की संरचना की और "थर्ड इंटरनैशनल कॉन्फेरन्स ऑफ हायब्रीडाइझेशन एंड प्लांट ब्रीडींग" का नाम बदल कर "थर्ड इंटरनैशनल कॉन्फ्रेरंस ऑफ जेनेटिक्स" कर दिया। बीसवीं सदी के पहले दशक के शोध निष्कर्ष, आनुवंशिकता की पहेलियों को समझने के लिए केंद्रित थे। उस समय वैज्ञानिकों की मान्यता थी कि डार्विन की जैव विविधता ही नैसर्गिक चुनाव का (नैचुरल सिलेक्शन) आधार है। वैज्ञानिक ऐसी प्रजातियों का अध्ययन करना चाहते थे, जिनमें नैसर्गिक लक्षणों तथा आनुवंशिकी बदलावों को नियोजित संकरण के बाद सरलता से पहचान कर उनमें डार्विन का क्रमागत उन्नति का सिध्दांत प्रमाणित किया जा सके। 1901-1910 के दौरान डार्विन के क्रमागत उन्नति के सिद्धांत को लेकर कई विचार धाराएं थीं।

बैटसन का मानना था की आनुवंशिक विविधताएं जीवों में बेतरतीब ढंग से नेच्युरल सिलेक्शन के कारण आती है। इस प्रकार से चयन किए गए लक्षणों को समय के अवधि के साथ नए लक्षणों में अथवा नए भ्रूण व्यवस्था में पारित किया जाता है। इस समय ह्युगो डी व्रीस नामक वैज्ञानिक, जिसनें अन्य दो वैज्ञानिक कार्ल कोरेंस (जर्मनी) तथा एरिक वॉन टेश्यरमाक (ऑस्टिया) के साथ मेंडल की वैज्ञानिक खोज को दुनिया के सामने लाया था, उनका मानना था कि क्रमागत विकास उत्परिवर्तनों (म्यूटेशन्स) के कारण होता है और उन्होंने उत्परिवर्तन से उत्क्रांती का सिद्धांत (म्यूटेशन थियोरी ऑफ ऐवोल्यूशन) दिया। डी व्रीस ने इवनिंग प्रिमरोज पर काम किया। उनके अनुसार नई प्रजातियां उत्परिवर्तन के

कारण बनती है। उत्परिवर्तन आनुवंशिक होते है और क्रमिक पीढ़ियों में बने रहते हैं और एक समय में वह नई प्रजातियों को जन्म देते हैं। इसी समय कोलंबिया विश्वविद्यालय के एडमंड विल्सन ने, जो की एक साइटोलॉजिस्ट थे, उनके सहयोगी थियोडोर बोव्हेरी (1901-1903) के साथ गुणसूत्रों की आनुवंशिकता का सिद्धांत दिया और यह प्रमाणित किया की गुणसूत्र कोशिका विभाजन के अर्धसूत्री विभाजन प्रक्रिया में मेंडल के आनुवंशिक सिद्धांत को निर्धारित कर सकते हैं।

दुनिया भर के जैव वैज्ञानिकों के भारी प्रयासों के बावजूद कोई भी आनुवंशिकी के क्षेत्र को अपना स्थान नहीं दिला पाए। थॉमस हंट मॉर्गन और उनके छात्रों ने कोलंबिया विश्वविद्यालय में साधारण फल मक्खी (ड्रोसोफिला मेलानोगास्टर) पर अपने काम के माध्यम से आनुवंशिकी शास्त्र की शुरुवात की। इस लेख के माध्यम से हम यह समीक्षा करना चाहते हैं की मॉर्गन ने उनके प्रयोगों के लिए फल मक्खियों (ड्रोसोफिला) को मॉडल के रूप में कैसे और क्यों चुना और कैसे एक छोटी सी फल मक्खी ने आनुवंशिकी विज्ञान कि शुरुआत की।

ड्रोसोफिला पर प्रारंभिक अध्ययन

मॉर्गन के आनुवंशिकी अध्ययन के लिए ड्रोसोफिला के चयन के पीछे कार्ल आईजेनमैन (1863-1923), ह्युगो डी व्रीस (1858-1935), चार्ल्स डेवेनपोर्ट (1866-1955), और एडमंड विलसन (1856-1931) द्वारा किए गए वैज्ञानिक शोधों की प्रेरणा थी। ड्रोसोफिला कोलंबिया और टी एच मॉर्गन के प्रयोगशाला में हार्वर्ड, इंडियाना युनिवर्सिटी और कोल्ड स्प्रिंग हार्बर से होते हुए पहुंची थी। 1901 के दौरान ड्रोसोफिला का उपयोग करने वाले प्रमुख अन्वेषक थे सी. डब्ल्यु. वुडवर्थ। वुडवर्थ एंटोमोलॉजिस्ट थे। उन्होंने ज्यादातर बर्कले, कैलिफोर्निया में काम किया था और उन्होंने ही ड्रोसोफिला को पहली बार प्रयोगशाला में बड़ी संख्या में संवर्धित किया और उनका उत्क्रांति तथा आनुवंशिकी अध्ययन के लिए महत्व समझा। डब्लू. ई. कैसल, उसी समय "प्रायोगिक उत्क्रांती विकास" पर विविध स्तनपाई जीवों पर अपने प्रयोग कर रहे थे। हार्वर्ड जूलॉजिकल लेबोरेटरी में अपनी भेंट के समय वुडवर्थ ने कैसल को तेजी से प्रजनन करने वाली ड्रोसोफिला के बारे में बताया। वुडवर्थ के सुझाव पर कैसल और उनके छात्र एफ. डब्ल्यू. कारपेंटर, ए. एच. क्लार्क, एस. ओ.मास्ट और डब्ल्यू. एम. बैरो ने वर्ष 1901-1906 में ड्रोसोफिला के संवर्धन के लिए केले के इस्तमाल की तकनीक विकसित की।

कैसल और उनके छात्रों ने ड्रोसोफिला के साथ आंतरिक प्रजनन (इनब्रीडिंग), संकरण तथा कृत्रिम चयन का प्रजनन क्षमता तथा विविध लक्षणों के परिवर्तनशीलता पर प्रभाव का अध्ययन किया। कैसल ने अपने प्रयोगों को डार्विन के सिद्धांतो के माध्यम से देखा और 60 पीढ़ियों तक ड्रोसोफिला का आंतरिक प्रजनन किया। किंतु इससे ड्रोसोफिला में कोई शारीरिक बदलाव या प्रजनन क्षमता में कमी जैसे लक्षण नहीं पाए गए। किंतु कैसल के ड्रोसोफिला के काम के प्रकाशन के कारण ही अन्य प्रयोगशालों का ध्यान ड्रोसोफिला की ओर आकर्षित हुआ। 1906 के बाद कैसल ने ड्रोसोफिला पर अध्ययन करना छोड़ दिया और चूहों एवं गिनी सुअरों जैसे छोटे स्तनधारियों के त्वचा रंग के मेंडेलियन वंशानुक्रम के अध्ययन पर अपना ध्यान केंद्रित किया।

गुफा में रहनेवाले जीवों का क्रमागत उत्क्रांति विकास के लिए अध्ययन तथा ड्रोसोफिला का इसी अध्ययन के लिए चयन

1900 के शुरुआत में, वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में नए मॉडल जीवों का शोध हो रहा था ताकि उनमें "प्रायोगिक उत्क्रांति विकास" सिद्धांत को प्रमाणित किया जा सके। डेविड जॉर्डन एक इथियोलॉजिस्ट (मछलियों का अध्ययन), विकासवादी एवं कार्ल आइजेनमैन के उपदेशक थे। जॉर्डन एवं आइजेनमैन का मानना था कि अपकर्ष (डीजेनेरेसी) का क्रमिक विकास में योगदान है और अपकर्ष के कारण ही परजीविता को जन्म मिलता है। अपकर्ष के कारण ही अंग प्रणालियां कमज़ोर होती है और अंततः उनका क्षय हो जाता है। अपने इस सिद्धांत की पुष्टी उन्होंने गुफा में रहने वाले नेत्रविहीन तथा रंगविहीन मछलियों में की। जार्डन की इस खोज के कारण वह अमेरिकी युजिनिक्स आंदोलन के शुरुआती संस्थापक बने। आइजेनमैन को भी नेत्रविहीन तथा रंगविहीन मछलियां आनुवंशिकी के अध्ययन के लिए आदर्श लगी एवं गुफा का सीमित

वातावरण भी "प्रायोगिक उत्क्रांती विकास" सिद्धांत को प्रमाणित करने के लिए अनुकूल प्रतीत हो रहा था। आइजेनमैन ने बताया की गुफा के सीमित वातावरण तथा सीमित खाद्य आपूर्ति के चलते गुफा की मछलियों की आंखें तथा रंग क्षय हो गए और उनकी जगह मछलियों ने संवेदनशील मज्जा संस्था विकसित कर ली। आइजेनमैन के एक छात्र विलियम मोएनखौस (1871-1947) ने इंडियाना यूनिवर्सिटी में "प्रायोगिक उत्क्रांती विकास" के अध्ययन के लिए ड्रोसोफिला के ऊपर अपना काम शुरू किया।

ड्रोसोफिला अध्ययन का विस्तार इंडियाना यूनिवर्सिटी से कोल्ड स्प्रिंग हार्बर से होते हुए कोलंबिया यूनिवर्सिटी तक हुआ।

कैसल ने फ्रैंक. ई. लुत्ज़ को ड्रोसोफिला के उसके अध्ययन तथा उपयोगिता की जानकारी दी। वही लुत्ज़ ने ड्रोसोफिला के बारे में मोएनखौस को 1904 की एक सभा के दौरान जानकारी दी। लुत्ज़ ने "प्रायोगिक उत्क्रांती विकास" के अध्ययन के लिए बनाए गए कारनिज संस्थान की प्रयोगशाला में ड्रोसोफिला के उपर अपने वैज्ञानिक अध्ययन का आरंभ किया। उसने ड्रोसोफिला के जीवनचक्र में आने वाली अंडे, लार्वा और प्यूपा चरणों का सखोल अध्ययन किया और जीवनचक्र निहित विकास (डेवेलपमेंट), व्यक्तिगत ट्रेट अथवा लक्षण आनुवंशिक तथा पर्यावरण से प्रभावित होते हैं, यह तथ्य प्रस्थापित करने का प्रयत्न किया। हालांकि प्रायोगिक तत्वों पर वे यह सिद्ध नहीं कर पाए और उन्होंने भी ड्रोसोफिला पर काम बंद कर दिया। मोएनखौस ने भी कैसल की तरह ड्रोसोफिला के उपर आंतरिक प्रजनन का प्रभाव समझने के लिए लिंग अनुपात, प्रजनन क्षमता तथा जीवनबल लक्षणों का अध्ययन किया किंतु वे भी असफल रहे। मोएनखौस ने ही फर्नांडिस पायने (1881-1977) को ड्रोसोफिला से परिचित कराया। पायने, आइजनमैन और मोएनखौस के गुफा के जीवों में प्रतिगामी रूप में क्रमागत विकास को देखने के अध्ययनों से काफी प्रेरित थे। पायने को जब कोलंबिया यूनिवर्सिटी में मॉर्गन की प्रयोगशाला में स्नातकोत्तर अध्ययन का अवसर मिला तो उन्होंने ड्रोसोफिला पर अपने क्रमागत विकास के अध्ययन का प्रस्ताव रखा। उन्होंने 59 और 69 पीढ़ियों तक ड्रोसोफिला का प्रजनन अंधेरे में किया तथा आंखों का रंग तथा शरीर के रंग के बदलावों के लक्षण देखने का प्रयास किया। लेकिन जब वे असफल रहें, तब उन्होंने अपना कार्य हेमीप्टेरन बग के गुणसूत्रों के अध्ययन पर केंद्रित किया।

ड्रोसोफिला को उपयोग करने के पीछे मॉर्गन की प्रेरणा तथा आनुवंशिकी विज्ञान की शुरुआत

1904 के समय में मॉर्गन भ्रूणविज्ञानी थे। एडमंड विलसन ने (सायटोलॉजिस्ट) मॉर्गन को 1904 में कोलंबिया यूनिवर्सिटी में काम करने के लिए नियुक्त किया। विलसन जर्मन जीवविज्ञानी थियोडोर बाव्हेरी से बहुत प्रभावित थे और उनका मानना था कि गुणसूत्र वंशानुगत इकाई के वाहक होते हैं तथा वही अगली पीढ़ी में अपने विशिष्टिताओं को पहुंचाते हैं। विलसन ने रेडुवीड बीटल और अन्य कीडों में गुणसूत्रों का अध्ययन किया और पाया की गुणसूत्रों में महिला एवं पुरूष अनुसार विशिष्ट अंतर होते हैं। नेटी स्टिवेन्स नामक महिला वैज्ञानिक भी इसी समय मीलवर्म और ड्रोसोफिला के गुणसूत्रों का अध्ययन कर रही थी। नेटी स्टिवेन्स ने लिंग निर्धारण करनेवाले गुणसुत्रों को हेटरोक्रोमोसोम कहा। विलसन और नेटी ने अपना शोध 1905 में प्रकाशित किया, उसके उपरांत ही विलसन ने लिंग निर्धारण की एक्स (X) और वाय (Y) गुणसूत्र प्रणाली की समीक्षा की। वाल्टर सटन (1877-1916) भी विलसन के छात्र थे। वाल्टर ने सिद्ध किया की अर्धसूत्रीविभाजन, गुणसूत्रों के न्यूनकारी विभाजन (रिडकश्नल डिविजन) के समय मेंडल के पृथक्करण (सैग्रिगेशन) तथा स्वतंत्र वर्गीकरण (इन्डीपेंडेंट एसोर्टमेंट) को दर्शाता है। गुणसूत्रों के इन अध्ययनों को विलसन ने "गुणसूत्रों की आनुवंशिकता" के सिध्दांत के रूप में प्रचलित किया।

लेकिन मॉर्गन "गुणसूत्रों की आनुवंशिकता" के सिध्दांत के बारे में संशय में थे, क्योंकि वह विविध प्राणियों के विभिन्न लिंग निर्धारण प्रक्रियाओं की जानकारी रखते थे। मॉर्गन का मानना था कि जीवों के लक्षणों को गुणसूत्रों पर विभाजित नहीं कर सकते क्योंकि गुणसूत्र बहुत कम है और लक्षण बहुत ज्यादा। मॉर्गन ह्युगो डी व्रीस के उत्परिवर्तन से उत्क्रांति के सिद्धांत से गहराई से प्रभावित

थे। लेकिन वे "प्रायोगिक उत्क्रांती विकास" के कैसल-डेवेनपोर्ट मॉडल पर विश्वास नहीं करते थे। जब मॉर्गन डी व्रीस से हॉलेंड में मिले, तो डी व्रीस ने उन्हें इवनिंग प्रिमरोज़ की नई प्रजाती दिखाई, जो आपस में प्रजनन कर पा रही थी लेकिन पैतृक पौधों (जिनसे नई प्रजाती बनी थी) के साथ नई प्रजाती का प्रजनन नहीं हो रहा था। डी व्रीस के अनुसार क्रमागत उत्क्रांती एक छलांग की तरह काम करती है, जिसके परिणाम स्वरूप डार्विनियन विविधताएं उत्पन्न होती हैं और नैसर्गिक चुनाव के पश्चात नए रंग एवं नए अंग प्रणाली का निर्माण होता है।

थॉमस हंट मार्गन अल्फेट स्टुरटेवेंट केल्विन ब्रिजेस
स्रोत : ब्लूमिंगटन ड्रोसोफिला स्टॉक सेंटर

जब मॉर्गन कोलंबिया आए तो उन्होंने चूहें, गिनी सूअर और कुक्कुटों का अध्ययन शुरू किया, जिससे वे डी व्रीस के उत्परिवर्तन से उत्क्रांती के सिद्धांत को प्रमाणित कर पाए। मॉर्गन को ड्रोसोफिला के उपयोग का सुझाव पहले कैसल ने दिया या लुत्ज़ ने दिया यह विवाद का विषय है, लेकिन मॉर्गन को ड्रोसोफिला की पहली मक्खियों की किश्त देने वाले तो पायने ही थे। 1906 में मॉर्गन ने ड्रोसोफिला पर अपना काम शुरू किया। मॉर्गन ड्रोसोफिला का उपयोग कर के नई प्रजातियां तथा नई किस्मों का शोध लेना चाहते थे जिनका प्रयोग वे डी व्रीस के सिद्धांत की पुष्टी के लिए कर सके। उस समय ड्रोसोफिला को वर्गीकरण विज्ञान में ड्रोसोफिला एम्पीलोफिला के नाम से जाना जाता था। लेकिन 1917 वर्गीकरण विज्ञान के वैज्ञानिकों के शुद्धतावादियों ने ड्रोसोफिला का नाम बदल कर ड्रोसोफिला मेलानोगॉस्टर कर दिया। मॉर्गन को ड्रोसोफिला के साथ 1906-1909 तक कोई सफलता नहीं मिली। अंत मे 1909-1910 वर्ष में मॉर्गन को अपनी पहली सफलता मिली। उन्हें ड्रोसोफिला में व्रीसीयन उत्परिवर्तन मिले। पहला उत्परिवर्तन था शरीर के उपर तीन काली पट्टी, दूसरा था हालटियर के अंदर एक दाग और तीसरा उत्परिवर्तन था सफेद रंग की आंखों वाला एक नर ड्रोसोफिला। किसी भी उत्परिवर्तन ने डी व्रीस के सिद्धांत की पुष्टी नहीं की, बल्की सफेद रंग के आंखों वाले उत्परिवर्तन ने अगली पीढ़ी मे लिंग विशिष्ट वर्गीकरण दिखाया। सफेद आंखों वाले नर का लाल रंग की आंखों वाली मादा से संकरण के बाद आने वाली ड्रोसोफिला संतती सारी लाल रंग के आंखों वाली थी। इस नई पीढ़ी के आंतरीक संकरण से अगली पीढ़ी में सफेद आंखों वाली नर मक्खियां तथा लाल रंग की आंखों वाली मादा मक्खियां पैदा हुई जिनका लिंग अनुपात एक नर से दो मादाओं का था। जब लाल आंखों वालें नर को सफेद आंखों वाली मादा से संकरण किया गया तब "क्रिस-क्रास" वंशानुक्रम सामने आया, जिनमे सारे नर सफेद आंखों वाले और सारी मादा संतति लाल आंखों वाली पाई गई। मॉर्गन ने इसे "लिंग मर्यादित वंशानुक्रम" संबोधित किया। विलसन ने कहा की यह X गुणसूत्र से जुड़ा एक लक्षण है, लेकिन मॉर्गन ने इसे स्वीकार नहीं किया। आगे मॉर्गन को ऐसे ही दो गुण/लक्षण मिले, "अल्पविकसित पंख" और "लघु पंख"। इन सभी लक्षणों को संकरण करके पीढ़ी दर पीढ़ी अध्ययन करने के बाद, मॉर्गन को समझ में आया की यह सारे लक्षण मेंडल के आनुवंशिक वर्गीकरण का पालन नहीं करते, बल्की X गुणसूत्रों के वंशानुक्रम से पारित होते हैं। मॉर्गन ने विलसन कि गुणसूत्रों की आनुवंशिकता के सिद्धांत की पुष्टी करते हुए "लिंग मर्यादित वंशानुक्रम" के अपने संबोधन को रद्द किया।

मॉर्गन ने अपने पहचाने हुए ड्रोसोफिला के लक्षणों को X गुणसूत्र से जुड़े लक्षणों का नाम दिया और बाद के अध्ययनों से गुणसूत्रों के क्रॉसिंग-ओवर का सिद्धांत दिया।

तत्पश्चात, मॉर्गन के ही छात्र अल्फ्रेड हेनरी स्टुरटिवेंट ने ड्रोसोफिला के X गुणसूत्र का आनुवंशिकी नक्शा बनाया और सिद्ध किया कि जीन (गुण/लक्षण) गुणसूत्रों पर स्थित होते है और उन्हें मैप किया जा सकता है। मॉर्गन के एक और छात्र केल्विन ब्रिड्ज ने X और Y गुणसूत्रों के असंयोजन (नौन-डिसजन्क्शन) की प्रक्रिया को प्रकाशित किया और गुणसूत्रों के आनुवंशिकता सिद्धांत का साइटोलॉजिकल प्रमाण भी दिया। एच. जे. म्यूलर ने एक्स-रे विकिरण से नए उत्परिवर्तनों के बनाने की प्रक्रिया का शोध लगाया और सूक्ष्म आनुवंशिक विविधताओं को निर्माण करने वाले मॉडिफायर जीन्स का अध्ययन कर गुणसूत्र आनुवंशिकी सिद्धांत को डार्वीनियन उत्क्रांती से जोड़ा। इन सभी को उनके योगदान के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस प्रकार ड्रोसोफिला के आनुवंशिकी से संबंधित वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण विज्ञान जगत में आनुवंशिकी शास्त्र का दौर शुरु हुआ।

डार्वीनियन चयन के प्रतिस्थापन के रूप में उत्परिवर्तन से उत्क्रांती का सिद्धांत अमान्य हो गया क्योंकि आनेवाले वर्षों में इवनिंग प्रिमरोज़ के ऊपर जो साइटोलॉजिकल अध्ययन हुआ, उसमे यह परामर्श निकला की डी व्रीस ने नई प्रजाती नहीं बनाई थी हालांकि वह एक जटिल गुणसूत्रों वाली ओएनोथेरा प्रजाती के विविध बहुगुणन (पॉलीप्लॉइडी), अन्युप्लॉइडी तथा गुणसूत्रों के संरचनात्मक पुनर्रचना के कारण उत्पन्न हुई थी। ड्रोसोफिला के ऊपर किए गए इन वैज्ञानिक निष्कर्षों ने कैसल-डेवेनपोर्ट की प्रायोगिक उत्क्रांती विकास मॉडल को भी गलत सिद्ध किया। गुफा में रहने वाले नेत्र तथा रंग विहीन मछलियों के अपकर्ष (डीजेनेरेसी) का सिद्धांत भी अमान्य हो गया। नेत्र तथा रंग विहीन जीन उत्परिवर्तन थे, क्योंकि गुफा के वातावरण में इन अंगों की आवश्यक्ता नहीं थी और गुफा में जीवित रहने के लिए संवेदी प्रणाली का जन्म मछलियों में हुआ।

स्टुरटिवेंट और बीडल ड्रोसोफिला के बारे मेx लिखते है कि "ड्रोसोफिला, वुडवर्थ और कैसल ने 1901 में विज्ञान जगत को दी हुई एक ऐसी भेंट है, जिसका महत्व आने वाली कई सदियों तक जीव विज्ञान को प्रभावित करता रहेगा"। पिछली पीढ़ियों की वैज्ञानिक उपलब्धताओं पर निर्मित, वर्तमान ड्रोसोफिला वैज्ञानिक न केवल नए प्रतिमान स्थापित कर रहे हैं बल्कि नई तकनीकी सफलताओं को ड्रोसोफिला के माध्यम से जीव विज्ञान के अनुसंधान को भी आगे बदलने में मदद कर रहे हैं। सौ वर्षों से भी अधिक समय से, वैज्ञानिकों ने ड्रोसोफिला के छोटे आकार, कम लागत, संवर्धन करने में सहजता, लघु जीवन चक्र, छोटे गुणसूत्र तथा उत्परिवर्तन बनाने और संकरण करने में सहजता, इन क्षमताओं का लाभ उठाया है। पिछले कुछ वर्षों में प्रायोगिक उपलब्धताओं ने आने वाली सदी के लिए मंच तैयार कर लिया है। वास्तव में, अत्याधुनिक अनुसंधान जीव विज्ञान की आज की आवश्यकता है, जिसे ड्रोसोफिला जैसा मॉडल जीव ही आपूर्ति कर सकता है।

हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

जी एम फसलें: असीम संभावनाओं का क्षेत्र

अतुल कुमार, ज्ञान प्रकाश मिश्र, शैलेन्द्र कुमार झा एवं कुमार दुर्गेश

बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग,
भा.कृ.अनु.प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली 110012

"उदार चरितानाम तु वसुधैव कुटुम्बकम" यानि उदार चरित्र के लोगों के लिए सारा संसार ही परिवार के समान होता है। इंगो पोत्रिकस अमेरिका के वैज्ञानिक हैं जहां प्रो विटामिन ए की कोई समस्या नहीं है, ये समस्या सबसे अधिक एशियाई मूल के देशों में व्याप्त है और यही कारण है कि उनके इस शोध को टाइम पत्रिका, जो विश्व की सर्वाधिक प्रचलित पत्रिकाओं में से एक है, के मुख-पत्र पर स्थान दिया गया जो किसी प्रतिष्ठित पुरस्कार से कम नहीं है। सन 2000 में इंगो पोत्रिकस ने सुनहरे चावलों का विकास किया था जिसकी खासियत ये है कि इन चावल के दानों में प्रो विटामिन ए की मात्रा अन्य चावलों से तीन गुना ज्यादा होती है और इसके प्रयोग से एशियाई देशों में प्रो विटामिन ए की समस्या जो काफी गंभीर है और जिसके कारण प्रतिवर्ष लाखों बच्चे कुपोषण का शिकार हो जाते हैं उनको बचाया जा सकता है।

जब चर्चा अपने देश की हो तो कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि क्या भारत वास्तव में एक कृषि प्रधान देश है ? यह बात हम वर्षों से कहते और सुनते आए हैं, पर इसकी प्रासंगिकता तब समझ में आई जब सारा विश्व कोरोना के संकट से त्राहिमाम कर रहा था, हमारा देश अपनी कृषि एवं इससे जुड़े व्यवसायों की वजह से संभला रहा। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि इस कोरोना के संकट की घड़ी में अगर भारतवर्ष में किसी एक क्षेत्र की वजह से भुखमरी की समस्या नहीं आई तो उसका सारा श्रेय कृषि एवं किसानों को जाता है। आवश्यकता आज इस बात की है कि हम उन विषयों के बारे में विचार करें जिनका सीधा मतलब हमारे प्यारे किसान भाइयों से है। इस देश में फसलों के बारे में कौन नहीं जानता पर ये जी एम फसल क्या हैं? जी एम एक संक्षिप्त शब्द है जिसका विस्तार है जेनेटिकली मॉडिफाइड। आनुवंशिक रूप से परिष्कृत जीव उन्हें कहते हैं जिनके आनुवंशिक पदार्थ को आनुवंशिक अभियांत्रिकी तकनीक के द्वारा बदल दिया गया है। इस प्रकार प्राप्त फसलों को पारजीनी फसलें यानी (जेनेटिकली मॉडिफाइड क्रॉप्स) कहा जाता है। सोचिए कि कोई ऐसा फूल का पौधा हो जो आपके बगीचे में लगा हो और आप उसे महीने में सिर्फ एक दिन पानी दें और उसके बावजूद भी वो लगातार बढ़ता रहे और आपको सुगंधित फूल दे तो आप कैसा अनुभव करेंगे, ऐसा प्रतीत होगा जैसे बिना किसी खास मेहनत के आप बागवानी का आनंद उठा रहे हैं। अगर धान की कोई ऐसी प्रजाति हो जिसमें कुछ ऐसे पोषक तत्वों की प्रचुरता हो जिसे खाने से बच्चों में कुपोषण की समस्या दूर हो या फिर कोई ऐसी धान की प्रजाति हो जिसकी खेती में किसान का उतना ही पानी लगे जितने में गेहूं की फसल तैयार होती है तो आपको अद्भुत एवं चमत्कारी एहसास होगा हमारे किसान भाइयों को, अगर ये संभव हो जाए जिसकी हम कल्पना कर रहे हैं। अगर हमें इस कल्पना को साकार करना है तो जी एम फसलों के रूप में एक अच्छा विकल्प हमारे पास है क्योंकि इस तकनीक को हमारे देश के वैज्ञानिकों ने भली-भांति समझ लिया है और नई जी एम् फसलों को किसानों तक पहुंचाने की दिशा में हम प्रयत्नशील हैं।

जैनेटिक इंजीनियरिंग यानी आनुवंशिक अभियांत्रिकी के द्वारा किसी भी जीव या पौधों के जीन को दूसरे पौधों में डाल कर एक नई फसल प्रभेद विकसित कर सकते हैं। इसका यह मतलब है कि अब दो अलग-अलग प्रजातियों के गुणों को हम आपस में जोड़ सकते हैं। प्रकृति में यह बहुत धीरे धीरे होता है, और कई लाखों वर्षों में ये बदलाव देखने को मिलते हैं। प्रकृति जब तक पूरी तसल्ली ना कर ले तब तक ये किसी पौधे या जानवर या सूक्ष्मजीव को

पनपने नहीं देती है, अन्यथा उसे खत्म कर देती है। परंतु मानव एक ऐसी प्रजाति है इस पृथ्वी पर जिसने उस तकनीक की खोज की है जिससे जो काम प्रकृति लाखों वर्षों में करती थी उसे कुछ वर्षों में ही किया जा सकता है। आज जैनेटिक इंजीनियरिंग की मदद से जीनों को एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति में अपनी मर्जी से सुविधापूर्वक डाला जा रहा है। इस प्रकार प्राप्त फसलों को पारजीनी फसलें भी कहा जाता है।

वैसे तो जीनांतरण के बहुत सारे तरीके हैं पर कुछ निम्नलिखित तरीके ज्यादा प्रचलित हैं-

१. टिश्यू कल्चर के द्वारा

२. उत्परिवर्तन के द्वारा

३. सूक्ष्मजीवों की मदद से

४. जीन गन के द्वारा

५. जीन एडिटिंग के द्वारा

इन सभी तरीकों में सबसे ज्यादा प्रयोग सूक्ष्मजीवों की मदद से पराजीनी फसलों के निर्माण में भारत वर्ष में किया गया है। जब हम इन फसलों के इतिहास पर नज़र डालते हैं तो यह ज्ञात होता है की सबसे पहली पारजीनी फसलों का निर्माण सन 1983 में अमेरिका में तंबाकू की फसल में किया गया था जो की विषाणु रोग प्रतिरोधक था परंतु यह प्रयास बहुत ज्यादा प्रचलित नहीं हुआ। तेरह साल बाद सन 1996 में अमेरिका में ही टमाटर की एक ऐसी प्रजाति विकसित की गई जिसके फल पकने के बहुत दिनों के बाद भी ख़राब नहीं होते थे। यह पहली प्रचलित फसल थी जिसे जी एम तकनीक द्वारा विकसित किया गया था। सन 1996 में पहली बार पारजीनी फसलें किसानों के खेतों में उगाई गई और उस वक्त पूरे विश्व में पारजीनी फसलों का क्षेत्रफल सिर्फ 1.7 मिलियन हेक्टर था। वर्ष 2016 में किए गए सर्वेक्षण में ये पाया गया है कि आज पूरे विश्व के 185.1 मिलियन हेक्टर क्षेत्र में पारजीनी फसलों की खेती की जाती है। वर्ष 2021 में यह क्षेत्र बढ़ कर 190 मिलियन हेक्टेयर से भी ज्यादा होने का अनुमान लगाया गया है। मानव समुदाय के द्वारा विकसित की गई शायद यह पहली ऐसी तकनीक है जिसकी सौगुना वृद्धि सिर्फ 14 साल में देखने को मिली है। इस पूरे क्षेत्रफल का लगभग 90 प्रतिशत भाग सिर्फ पांच देशों से पूरा हो जाता है। अमेरिका विश्व में क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे पहले स्थान पर है और उसके बाद ब्राज़ील, अर्जेंटीना एवं भारत क्रमशः दूसरे तीसरे एवं चौथे स्थान पर है। सन 2002 में हमारे देश में बी टी कपास को किसानों के खेतों में उगाने की मान्यता मिली और आज हमारे देश के 96 प्रतिशत से अधिक भाग में बी टी कपास की खेती होती है। सन 2002 में हमारे देश में कुल 13 मिलियन कपास की गांठों का उत्पादन होता था जो सन 2017 में लगभग 40 मिलियन हो गया। तीन गुना वृद्धि सिर्फ 15 वर्षों में एक अप्रत्याशित उपलब्धि है, यहां यह बताना बहुत आवश्यक है कि सन 2002 में भारत में कपास का आयात होता था और आज स्थिति ये है कि हम कपास का निर्यात करते हैं। सिर्फ एक फसल में बी टी तकनीक ने इतनी बड़ी क्रांति ला दी, तो सोचिये, अगर कुछ और फसलों में भी जी एम फसलों को उगाने की अनुमति दी गई होती तो आज परिस्थिति कुछ और ही होती। आज सिर्फ एक फसल में इस तकनीक को अपना कर विश्व में हमारा चौथा स्थान है तो अगर बी टी बैंगन जिस पर हमारे देश में सन 2012 में प्रतिबंध लगा दिया गया, अगर ऐसा न हुआ होता तो आज हमारा देश भी इस सब्जी के उत्पादन में कितनी प्रगति कर गया होता, क्योंकि प्रतिबंध सिर्फ बी टी बैंगन के बीज की बिक्री पर ही नहीं लगा अपितु जी एम फसलों में किसी प्रकार के शोध पर भी प्रतिबंध लग गया जिसके कारण हमारा देश काफी पीछे रह गया। नई सरकार के मई 2014 में सत्ता में आने के बाद प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के नेतृत्व में जब वैज्ञानिकों ने जी एम फसलों के पक्ष में बात रखी तो उनकी बातों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सुना गया और उसके बाद जी एम फसलों के शोध की दिशा में जो रुकावटें थीं उन्हें हटा लिया गया और हमारे देश के बहुत सारे राज्यों ने जी एम फसलों के परीक्षण को मंजूरी प्रदान की। अगर हम आज की बात करें तो भारत में 50 विश्वविद्यालयों, 45 शोध संस्थानों, एवं 145 निजी क्षेत्रों में जी एम फसलों पर शोध कार्य हो रहे हैं। आज से दो साल पहले यह कहना तर्कसंगत था कि जी एम फसलों की जन्म से पहले ही मृत्यु हो चुकी है पर आज की तारीख में यह कहना यथोचित नहीं है क्योंकि जी एम फसलों पर अनुसंधान तेजी से चल रहा

है जिसका उदाहरण दिल्ली विश्वविद्यालय के द्वारा तेजी से प्रगति की ओर अग्रसर जी एम संकर सरसों है।

प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है, जिस तीव्र गति से जी एम फसलों का विस्तार सारे विश्व में हो रहा है वह इस बात का परिचायक है कि इस तकनीक में कितनी अभूतपूर्व क्षमता है. इसलिए यह कहना यथोचित है कि जी एम फसलें सिर्फ फसल ही नहीं एक क्रांति है जिसे जितनी देरी से अपनाया जाए उतना ही नुकसान है। आज पूरा विश्व जहां अगले स्तर की तकनीक 'जीन एडिटिंग' के क्षेत्र में कार्य कर रही है वहीँ हम जी एम फसलों की उपयोगिता पर वाद-विवाद कर रहे हैं। आज हमें विज्ञान की असीम संभावनाओं का उपयोग अगर जन कल्याण हेतु करना है तो नीतिगत निर्णय लेने में विलंब नहीं करना चाहिए। अगर भारतवर्ष को अपने आप को अमेरिका जैसे विकसित देशों की कतार में खड़ा करना है और विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धा करनी है तो जो भ्रांतियां इन फसलों के बारे में फैली हुई हैं उनके बारे में किसानों को बताना होगा जिससे की चंद लोग जो देश हित को किनारे रख अपने निजी स्वार्थ के लिए किसानों को उकसाते हैं उनके खिलाफ कड़ी करवाई की जा सके। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम देश हित को सर्वोपरि रखें और आगे बढ़ें, इसी में हमारा सर्वांगीण विकास संभव है।

फूल चुन कर एकत्र करने के लिए मत ठहरो। आगे बढ़े चलो, तुम्हारे पथ में फूल निरंतर खिलते रहेंगे।

- रवींद्रनाथ ठाकुर

सही स्थान पर बोया गया सुकर्म का बीज ही महान फल देता है।

- कथा सरित्सागर

जैविक खेती आज के समय की मांग और मुख्य आवश्यकता

राजेश कुमार एवं सुनील पब्बी

सूक्ष्मजीव विज्ञान संभाग

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली - 110 012

जैविक खेती को समझने एवं फसल की उत्पादकता बनाये रखने के लिए इसे मुख्य रूप से दो घटकों में बांट सकते है। पहला पौधों के लिए खुराक अर्थात पोषक तत्व प्रबंध तथा दूसरा कीड़ों एवं रोगों से रक्षा अर्थात समेकित नाशीजीव प्रबंधन करना। सफल जैविक खेती के लिए इन दोनों को विस्तार से जानना चाहिए।

जैविक विधि से पोषक तत्व प्रबंध

पौधों को अपने जीवन चक्र को पूर्ण करने के लिए लगभग 17 प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती हैं। इनमें कार्बन, हाइड्रोजन व आक्सीजन पौधों को पानी व हवा से मुफ्त मिल जाते है। जबकि जस्ता, मैंगनीज, लोहा, तांबा, बोरोन, मोलीब्डेनम, कोबाल्ट एवं निकल (आठ तत्व) की बहुत कम मात्रा में आवश्यकता होती है। मिट्टी में कैल्शियम एवं मैग्नीशियम की प्रायः कमी नहीं पाई जाती है। इन तत्वों का बहुत छोटा भाग दानों में संगृहित होता है अतः यदि फसल अवशेष, कंपोस्ट, गोबर की खाद का नियमित उपयोग किया जाए तो पौधों के लिए इन तत्वों के साथ पोटाश की भी कमी नहीं रहती है। सबसे महत्वपूर्ण तत्व नाइट्रोजन की पौधों के लिए पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता निर्धारित करना जैविक खेती का सबसे कठिन कार्य है।

पौधों की नाइट्रोजन की आवश्यकता की पूर्ति निम्नलिखित तरीकों से की जा सकती है-

1. एक ही प्रकार की फसल हर साल नहीं उगाएं और इसमें विविधता रखें। वर्ष में एक बार दाल वाली फसल अवश्य बोनी चाहिए। बाजरा, मक्का, ज्वार, तिल के बाद सर्दी में चना, मसूर बोएं। गेहूं, जौ, सरसों के बाद चौमासें में मूंग, मौठ, उड़द, अरहर, मूंगफली बोएं। दाल वाली फसल की जडों में राईजोबियम की गांठे होती हैं। ये गांठे यूरिया की छोटी-छोटी फैक्ट्रियों का काम करती हैं।
2. फसलों के अवशेष में आधा प्रतिशत तक नाइट्रोजन होता है इसलिए इसका कंपोस्ट बनाकर उपयोग करें। इससे पोषक तत्वों के साथ भूमि में कार्बन की मात्रा भी बढ़ती है जो जमीन में नाइट्रोजन को रोकने के लिए आवश्यक है।
3. ग्वार, ढेंचा, सनई की हरी खाद से जमीन में नाइट्रोजन व कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है।
4. नीम, अरंडी, करंज की खलियों का उपयोग भी नाइट्रोजन की आपूर्ति के लिए किया जा सकता हैं। बुवाई के एक माह पहले 10 टन खली को एक हेक्टेयर खेत में मिलाएं।
5. ऊन की खाद, मुर्गी की बीट, भेड़-बकरियों की मिंगनी, खून की खाद, हड्डी की खाद आदि का उपयोग जमीन में पोषक तत्वों की उपलबद्धता बढ़ाता है। अतः इनका उपयोग भी फायदेमंद रहता है। उपर्युक्त सभी उपायों को समन्वित रूप से अपनाकर जैविक खेती में नाइट्रोजन की आपूर्ति बनाए रखी जा सकती हैं।

पौधों के हानिकारक कीड़ें, बीमारियां एवं खरपतवार नाशीजीव की श्रेणी में आते हैं।

इनका प्रकोप फसल को हानि पहुंचा सकता है। उक्त नाशीजीव की कमजोर अवस्था पर प्रभावी प्राकृतिक तरीकों का उपयोग कर इनके प्रकोप को न्यूनतम स्तर पर रखा जा सकता है।

कीट प्रबंध

फसलों को हानि पहुंचाने वाले कीट मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के कीट पौधों का रस

चूसकर एवं वायरस का संक्रमण फैलाकर नुकसान पहुंचाते हैं। इनमें मोयला या चेंपा, हरा, तेला, थ्रिप्स, लाल मकड़ी, सुन्दर झंगा (पेन्टेड बग) आदि प्रमुख कीड़े हैं। इन हानिकारक कीडों के प्रकृति में अनेक दुश्मन मौजूद हैं जैसे लेडीबर्ड बीटल, क्राइसोपा व मकड़ी। क्राइसोपा अब प्रयोगशालाओं में भी तैयार किए जाने लगे हैं।

दूसरे प्रकार के कीड़ों में सुंडिया (लट) प्रमुख हैं जो फसलों को काटकर एवं कुतरकर हानि पहुंचाती हैं। प्रकृति में इन कीड़ों के दुशमन भी मौजूद हैं इनमें ट्राइकोग्रामा, मड वैस्प, रोबर मक्खी, मेन्टिस, पक्षी आदि शामिल हैं।

सुण्डियों के नियंत्रण के लिए बी.टी. एन.पी.वी. आदि का उपयोग प्रभावी होता हैं। नीम की पत्तियों का रस, नीम का तेल, नीम की खली एवं नीम के तेल में उपस्थित अजाडिरेक्टिन बहुत प्रभावी कीटनाशक का काम करता हैं। यह सभी प्रकार के कीड़ों का नियंत्रण करने में सक्षम हैं। इनके अतिरिक्त फैरोमेन ट्रेप, प्रकाशपाश द्वारा भी प्रौढ़ कीटों को पकड़कर नष्ट किया जा सकता है।

बीमारियों का प्रबंध

1. भूमि के जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए गर्मियों में गहरी जुताई करनी चाहिए। इससे जमीन में छुपे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।
2. एक ही खेत में एक ही फसल की बुवाई हर वर्ष नहीं करनी चाहिए जिससे उस फसल में लगे कीटाणुओं को अगले मौसम में उनके चाहत के पौधे नहीं मिलने से भोजन नहीं मिलेगा और मर जाएंगे।
3. रोगरोधी उन्नत किस्मों की बुवाई करनी चाहिए। क्योंकि उनमें रोगों से लड़ने की शक्ति होती हैं।
4. बीज को गर्मी की तेज धूप में सुखाएं और नमी को निर्धारित मात्रा में ही रखें। इससे बीज में मौजूद जीवाणु मर जाते हैं।
5. ट्राइकोडर्मा एक मित्र फफूंद है, यह रोग फैलाने वाली फफूंद की बढवार रोक देती हैं। अतः बीज को ट्राइकोडर्मा (फफूंद) से उपचारित करके बोएं। इससे भूमि एवं बीज जनित रोगों से एक हद तक छुटकारा मिल सकता है।
6. फसल में रोगी पौधों को देखते ही उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

जैविक खेती में जैव उर्वरकों का महत्व

जैव उर्वरक एक जीवित उर्वरक है जिसमें सूक्ष्मजीव है। नाइट्रोजन स्थिर करने वाले सूक्ष्म जीवाणु भूमि में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं। इनमें बैक्टीरिया, कवक, नीलहरित शैवाल, अजोला, जल फर्न आदि प्रमुख हैं। इस खाद में विशेष प्रकार के जीवाणु होते हैं जो दलहनी पौधों की जड़ ग्रंथियों में वायुमंडल से नाइट्रोजन तत्व लेकर समेट लेते हैं या फिर कुछ जीवाणु भूमि से अघुलनशील और स्थायी तत्व जैसे फॉस्फोरस, पोटाश, जस्ता, लोहा इत्यादि को घुलनशील बनाकर उनकी उपलब्धता को बढ़ा देते हैं।

राइजोबियम जैव उर्वरक

राइजोबियम एक मुख्य जैव उर्वरक है। यह जीवाणु दलहनी फसलों के पौधों की जड़ों में मूल रोमों के द्वारा प्रवेश कर जाते है और कार्टेक्स में ग्रंथियां बना लेते हैं इन ग्रंथियों में उपस्थित राइजोबियम नाइट्रोजन का भूमि में स्थिरीकरण करते हैं। राइजोबियम जीवाणु खाद का उपयोग मुख्य रूप से दलहनी फसलें अरहर, उड़द, मूंग, चना, सोयाबीन, मूंगफली, मटर आदि में किया जाता है। दलहनी फसलों में इस जैव उर्वरक के उपयोग से लगभग 15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है।

एजोस्पाइरिलम

मोटा अनाज जैसे मक्का, ज्वार व अन्य बीज वाली फसलों में यह जीवाणु विशेष रूप से उपयुक्त है। यह असहजीवी जीवाणु मृदा में स्वतंत्र रूप से निवास करते हुए वायुमंडलीय नाइट्रोजन को इकटठा कर पौधों को देता है।

एजोटोबेक्टर

एजोटोबेक्टर अतिसूक्ष्म जीवाणु हैं। जो खाद्यान फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने का कार्य करते हैं। यह वायुमंडल की नाइट्रोजन को स्थिर करके पौधों के

लिए इस तत्व की उपलब्धता के साथ-साथ इण्डोल ऐसिटिक अम्ल, जिब्रेरलिक अम्ल जैसे वृद्धि हार्मोन्स आदि को उत्सर्जित करके बीजों के अंकुरण एवं जमाव पर अच्छा प्रभाव डालते हैं।

पी.एस.बी.

भूमि में बैक्टीरिया एवं कवक अनेक फॉस्फोरसयुक्त यौगिकों का संश्लेषण करते हैं। पौधों की जड़ों में कवक भी पाए जाते हैं जिसको माइकोराइजा कहते हैं। इन माइकोराइजा के कारण जड़ों में फॉस्फोरस मिलता रहता है। ये जीवाणु कार्बनिक अम्लों का उत्पादन करते हैं जो अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील फॉस्फोरस बनाने में सहायक होते हैं।

नीले हरे शैवाल

इसकी मुख्य प्रजाति ऐनाबीना नास्टाक है। नीले हरे शैवालो के जैव उर्वरक धान एवं धान आधारित फसल पद्धित की खेती के लिए अति उत्तम हैं। जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरिकरण कर लगातार नाइट्रोजन प्रदान कराती है। इसके उपयोग से लगभग 25-30 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर का योगदान मिलता है और भूमि का भी सुधार होता है।

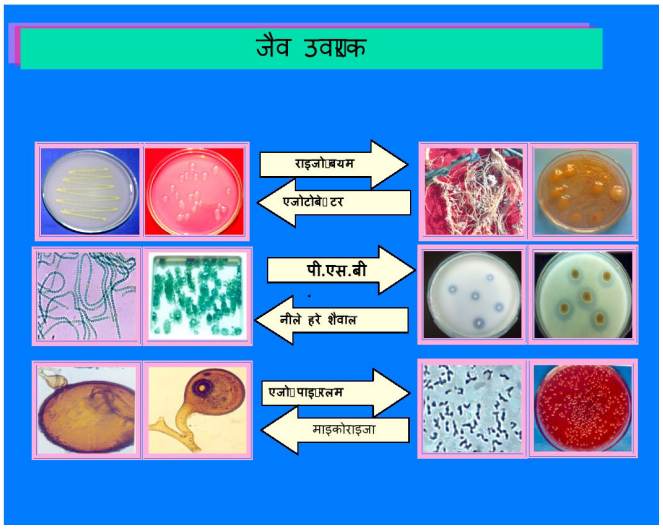

ऐजोला

ऐजोला एक जल फर्न है इसका उपयोग जैव उर्वरक एवं हरी खाद के रूप में करते हैं इसके उपयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती हैं। ऐजोला धान की फसल के लिए अति उपयोगी है। यह अम्लीयता, शुष्कता एवं बीमारियों की प्रतिरोधकता को सहन कर सकती है। ऐजोला पानी पर तैरती हुई एक फर्न या काई होती है और धान के खेतों में यह अक्सर दिखाई देती है।

जैव उर्वरको के लाभ

ये फसल की पैदावार को लगभग 10-15 प्रतिशत बढ़ाते हैं। ये रासायनिक नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की 25 प्रतिशत मात्रा को प्रतिस्थापित करते हैं। ये मृदा को जैविक रूप से सक्रिय बनाते हैं। ये मृदा की प्राकृतिक उत्पादकता को संरक्षित करते है। ये सूखे व कुछ मृदा जनित रोगों से फसल का बचाव भी करते हैं।

सावधानियां

जीवाणु खाद को पैकेट पर लिखी फसल के लिए ही अन्तिम तिथि से पूर्व प्रयोग करें।

जीवाणु खाद को गर्मी तथा धूप से बचाकर रखें एवं इसका भंडारण ठंडे स्थान पर करें।

पैकेट पर लिखे निर्देशों का पालन करें और फसल मे भरपूर लाभ पाने के लिए समयानुसार प्रयोग करें। जीवाणु खाद को रासायनिक उर्वरकों एवं दवा के साथ नहीं मिलाना चाहिए।

निष्कर्ष

मृदा स्वास्थय को सुधारने हेतु व पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए जैविक खेती आज के समय की मुख्य आवश्यकता है। लगातार अनुसंधान के फलस्वरूप जैविक खेती को लाभप्रद एव टिकाऊ बनाने के आज बहुत संसाधन उपलब्ध हैं। कम लागत, फसलों के अधिक बाजार भाव उत्तम गुणवता व अधिक भंडारण क्षमता इसके मुख्य फायदें है।

दलहनः वर्तमान परिदृश्य, चुनौतियां एवं संभावनाएं

राजू आर., मुरलीधर अस्की एवं रणबीर सिंह
कृषि अर्थशास्त्र संभाग, आनुवंशिकी संभाग एवं सस्य विज्ञान संभाग
भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

भारतीय कृषि की रोजगार सृजन, आजीविका, खाद्य, पोषण और पर्यावरण सुरक्षा में बहु आयामी सफलता से जुड़ी एक शानदार लंबी कहानी रही है। इस पहलू में हरित क्रांति परिवर्तन का पहला दौर था। खाद्यान्नों, सब्जियों और बागवानी उत्पादों-फलों के अतिरिक्त, इस बात की सराहना की जानी चाहिए कि दालें कृषि उत्पादन की निरंतरता बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण अवयव हैं क्योंकि दलहन फसलें वाहिका जड़ प्रणाली के कारण मृदा को अधिक उपजाऊ बनाते हुए संपूर्ण मृदा की उर्वरता में भी सुधार करती हैं। दालें प्रोटीन, रेशा सामग्री का भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं और इनमें विटामिन और खनिजों की प्रचुर मात्रा होती है। वे दलहनी पौधे जिनकी फलियों को तोड़कर उनके अंदर के बीजों का प्रयोग दाल के रूप में किया जाता है, दलहनी फसलें कहलाती हैं। सरल भाषा में कहा जाए तो दलहन उस अनाज को कहते हैं, जिससे दाल बनती है यानी दाल पैदा करने वाली फसल को दलहन कहा जाता है। हमारे देश में दलहनी फसलों की क्षमता के अनुरूप उत्पादन न मिल पाने के बाधक कारकों में दलहन उत्पादक क्षेत्रों में व्यापत जैविक एवं अजैविक कारक तथा सामाजिक-आर्थिक कारण प्रमुख हैं। भारत में दालों के कम उत्पादन के कारण आज भी हमें अन्य देशों से आयात करना पड़ रहा है। इस मद पर काफी मात्रा में बहुमूल्य विदेशी मुद्रा का प्रत्येक वर्ष खर्च करना पड़ रहा है। किसी भी फसल की उत्पादकता एवं उपज बढ़ाने में अच्छे गुणवता के बीजों की सार्थक भूमिका होती है। देश की विभिन्न कृषि जलवायु स्थितियों के अनुकूल ऐसे उन्नत बीजों का विकास कृषि अनुसंधान संस्थानों में कार्यरत वैज्ञानिकों के कड़े श्रम का परिणाम है। किसान इन बीजों का प्रयोग करते हुए संस्तुत कृषि तकनीकियों के माध्यम से दलहनी फसलों की पैदावार में वृद्धि कर अपनी आमदनी में वृद्धि करने के साथ-साथ देश की आयात निर्भरता में भी कमी ला सकते हैं।

दलहनी फसलों का महत्व

दलहनी फसलों का भारतीय दशाओं में निम्न महत्व हैः-

1. भारतीय भोजन जो कि मुख्यतया शाकाहारी होता है, में दलहन प्रोटीन पूर्ति का मुख्य साधन है।
2. दलहनी फसलें आवश्यक अमीनों अम्लों, जो कि जीवों की शारीरिक संगठन के लिए अद्वितीय महत्व रखती हैं की पूर्ति का मुख्य साधन है।
3. दलहनी फसलों के हरे पौधे, पशुओं के लिए सर्वोत्तम चारे में प्रयोग किए जाते हैं।
4. दलहनी फसलें, दाल की पूर्ति के साथ-साथ हरी फलियां एवं पत्तियां भी सब्जी के रूप में प्रयोग की जाती हैं।
5. दलहन फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण का नैसर्गिक गुण होने के कारण वे वायुमंडलीय नाइट्रोजन को अपनी जड़ों में स्थिर करके मृदा उर्वरता को भी बढ़ाती है।
6. दलहनी फसलों के पौधे फैलकर बढ़ते हैं जिसके कारण वे मृदा को आच्छादन प्रदान करते हैं परिणाम स्वरूप मृदा कटाव कम होता है।
7. दलहनों की जड़ प्रणाली मूसला होने के कारण वे शुष्क क्षेत्रों जहां पर वर्षा कम होती है तथा सिंचाई की सुविधा नहीं होती है वहाँ भी उत्पादित की जा सकती हैं।
8. दलहनी फसलों को हरी खाद के रूप में प्रयोग करके मृदा में जीवांश पदार्थ तथा नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है।

9. दलहनी फसलों के दानों के छिलकों में प्रोटीन के अलावा फॉस्फोरस व अन्य खनिजों की काफी मात्रा होने के कारण मुर्गी व पशुओं के लिए महत्वपूर्ण आहार शामिल होते हैं।
10. सीमान्त तथा कम उपजाऊ मृदाओं में भी दलहनी फसलों को उगाया जा सकता है।
11. दालों के अतिरिक्त इनका प्रयोग मिठाइयां, पकौड़ी, नमकीन आदि बनाने में भी किया जाता है।
12. सोयाबीन व मूंगफली की खलियां पशुओं के लिए अति पौष्टिक आहार होती हैं।
13. कुछ फलीदार फसलों जैसे कि मूंगफली व सोयाबीन का प्रयोग व्यापारिक स्तर पर तेल प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

भारत में दलहनों का परिदृश्य

खाद्य सुरक्षा का मूल्यांकन प्रायः उस खाद्य वस्तु की प्रति व्यक्ति आवश्यकता के अनुसार उपलब्धता से किया जाता है। बढ़ती जनसंख्या के साथ भारत में खाद्य वस्तु के उत्पादन में भी प्रति व्यक्ति आवश्यकता को पूरा करने के लिए कई गुना वृद्धि करने की आवश्यकता है। दालों का उत्पादन सभी तीनों ऋतुओं में किया जाता है। खरीफ में अरहर, उड़द, मूंग, लोबिया, कुल्थी, मोठ; रबी में चना, मसूर, मटर, खेसारी, राजमा और जायद में मूंग, उड़द, लोबिया का उत्पादन होता है। क्षेत्रफल की दृष्टि से कुल खाद्यान्नों के संदर्भ में दालों का कुल योगदान 11 प्रतिशत है, जिसमें चना 4 प्रतिशत, अरहर 2 प्रतिशत और अन्य दालों का लगभग 5 प्रतिशत क्षेत्र है। दलहनी खेती का लगभग 37 प्रतिशत ही सिंचाई पर आधारित है, जबकि लगभग 63 प्रतिशत दलहनी खेती का क्षेत्रफल वर्षा पर निर्भर है। वर्ष 2015-16 के दौरान भारत में दालों का उत्पादन लगभग 16.35 मि.टन था। इसमें आशातीत वृद्धि के साथ वर्ष 2017-18 में दालों का उत्पादन 25.42 मि.टन के रिकार्ड स्तर पर हुआ है। इसका श्रेय प्रमुख दालों के क्षेत्रफल में उल्लेखनीय वृद्धि और उत्पादकता के साथ-साथ किसानों के प्रयासों, विभिन्न स्तरों पर भारत सरकार और कृषि क्षेत्र में संलग्न अनुसंधानकर्ताओं, विज्ञानियों, अधिकारियों एवं कार्मिकों को दिया जा सकता है (सारणी1)।

सारणी 1: भारत में दलहनी फसलों की उत्पादन स्थिति

वर्ष	क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर)	उत्पादन (मिलियन हेक्टेयर)	उत्पादकता (कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयेर)
1950-51	19.09	8.410	441
1951-52	18.78	8.42	448
1952-53	19.84	9.19	463
1953-54	21.73	10.62	489
1954-55	21.91	10.95	500
1955-56	23.22	11.04	476
1956-57	23.32	11.55	495
1957-58	22.54	9.56	424
1958-59	24.31	13.15	541
1959-60	24.83	11.80	475
1960-61	23.56	12.70	539
1961-62	24.24	11.76	485
1962-63	24.27	11.53	475
1963-64	24.18	10.07	416
1964-65	23.88	12.42	520
1965-66	22.72	9.94	438
1966-67	22.12	8.35	377
1967-68	22.65	12.10	534
1968-69	21.26	10.42	490
1969-70	22.02	11.69	531
1970-71	22.54	11.82	524
1971-72	22.15	11.09	501
1972-73	20.92	9.91	474
1973-74	23.43	10.01	427
1974-75	22.03	10.2	455

1975-76	24.45	13.04	433
1976-77	22.98	11.36	494
1977-78	23.50	11.97	510
1978-79	23.66	12.58	515
1979-80	22.26	8.57	385
1980-81	22.46	10.63	473
1981-82	23.84	11.51	483
1982-83	22.83	11.86	519
1983-84	23.54	12.89	548
1984-85	22.74	11.96	526
1985-86	24.42	13.36	547
1986-87	23.16	11.71	506
1987-88	21.27	10.96	515
1988-89	23.15	13.85	598
1989-90	23.41	12.86	549
1990-91	24.66	14.26	578
1991-92	22.54	12.02	533
1992-93	22.36	12.82	573
1993-94	22.25	13.30	598
1994-95	23.03	14.04	610
1995-96	22.28	12.31	552
1996-97	22.45	14.15	630
1997-98	22.87	12.97	567
1998-99	23.50	14.91	634
1999-00	21.12	14.42	635
2000-01	20.35	11.08	544
2001-02	22.01	13.37	607
2002-03	20.50	11.13	543
2003-04	23.46	14.91	635
2004-05	22.76	13.13	577
2005-06	22.39	13.39	598
2006-07	23.19	14.20	612
2007-08	23.63	14.76	625
2008-09	22.09	14.57	659
2009-10	23.28	14.66	630
2010-11	26.40	18.24	691
2011-12	24.46	17.09	699
2012-13	23.47	18.45	786
2013-14	25.21	19.25	764
2014-15	23.55	17.15	728
2015-16	24.91	16.32	655
2016-17	29.15	23.13	786
2017-18	29.81	25.42	853
2018-19	29.16	22.08	757
2019-20 अनुमानित	28.34	23.15	817

स्रोतः आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, डीएसी एवं एफडब्ल्यू

दलहन उत्पादन कम होने के कारण

दालों को अक्सर सीमांत, अपर्याप्त सिंचाई और कम गुणवता वाली मृदा में उगाया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप फसल का कम उत्पादन होता है। इसके अतिरिक्त भारत के कुछ हिस्सों में दालों की फसल विफलता अथवा कम उपज भी इस तथ्य के कारण हैं कि भारत में फसलें मुख्यतः अस्थित और अनिश्चित वर्षा स्थितियों के कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उगाई जाती हैं। उक्त तथ्यों के अलावा निम्न उल्लेखित कारक कम उत्पादन एवं उत्पादकता के कारण हैं, जैसेः

1. **शुष्क क्षेत्रों में खेतः** दलहनी फसलों का बोए जाने वाला लगभग 92 प्रतिशत क्षेत्र वर्षा पर आधारित है जिससे मानसून के असामान्य व्यवहार व समय पर वर्षा न होने के कारण इन फसलों की बुवाई समय पर नहीं हो पाती है तथा प्रति हेक्टेयर पौध संख्या

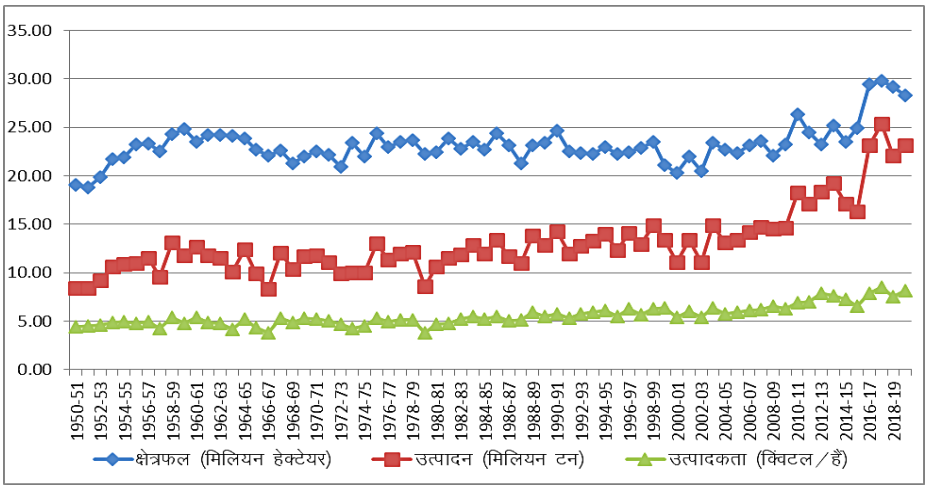

चित्र 1. 1950-51 से 2019-20 तक भारत में दालों का क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता

भी सामान्य से कम रहती है जिससे इन फसलों की उत्पादकता में भारी कमी होती है।

2. **सिंचाई में कमी या उचित समय पर सिंचाई न करनाः** दाल वाली फसलों को सूखा ग्रस्त बारानी क्षेत्रों में उगाया जाता है जहां पर सिंचाई की कोई सुविधा नहीं होती है। क्रांतिक अवस्था पर सिंचाई न होने के कारण इन फसलों की उपज में भारी कमी आ जाती है।

3. **अनुपयुक्त भूमि की दशाः** दलहन फसलों की बुवाई प्रायः लवणीयता, मृदा कटाव एवं जलमग्नता आदि क्षेत्रों में की जाती है उन भूमियों में अच्छा दलहन उत्पादन नहीं हो पाता।

4. **दलहनी फसलों पर प्राकृतिक दबावः** दलहनी फसलों अत्यधिक संवेदनशील होती हैं जिससे अधिक वर्षा, ओले, पाला और वातावरण में अधिक नमी के कारण उत्पादन में गिरावट आ जाती है।

5. **कीटों व बीमारियों से हानिः** सामान्यतः दाल वाली फसलें बीमारियों एवं कीट पतंगों के प्रति संवेदनशील होती है। इनमें लगने वाली बीमारियों में विल्ट, झूलसा, मोजैक, चूर्णी फफूंदी, पत्ती धब्बा मुख्य है। कीटों में चेंपा, बिहार रोमिल सुंडी, फली बेधक एवं दीमक हैं जिनकी समय पर रोकथाम नहीं होने के कारण इन फसलों की उपज कम मिलती है।

6. **खरपतवारों का प्रकोपः** दलहनी फसलों की प्रारंभिक वृद्धि धीमी होने के कारण खरपतवारों की संख्या भी अधिक है। इन फसलों में खरपतवारों के नियंत्रण का क्रांतिक समय 20-45 दिन होता है। सामान्यतः फसलों की उपज में भारी कमी आ जाती है।

7. **प्रमाणित बीजों की कमीः** दलहनी फसलों के प्रमाणित बीजों की उपलब्धता में कमी तथा इन बीजों के वितरण में संस्थाओं द्वारा रुचि लेने के कारण समय से किसानों को समुचित मात्रा में आपूर्ति नहीं हो पाती है, जिससे किसान देसी बीज की बुवाई कर देते हैं इससे उत्पादन में वृद्धि नहीं होती है।

8. **अधिक उपज देने वाली प्रजातियों की कमीः** विभिन्न दलहनी फसलों में हमारे देश में विदेशों की तुलना में अधिक उपज देने वाली जातियों का विकास नहीं हो पाया है। फ्रांस में दलहनी फसलों की औसतन उपज 50-95 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है जबकि भारत में दलहन फसलों की औसतन उपज 5.53 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

9. **कम अवधि वाली जातियों की कमीः** दलहनी फसलों में कम समय में पकने वाली उन्नत जातियों की कमी है। अतः सघन फसल चक्र में सभी दलहनी फसलों को नहीं अपनाया जा सकता है।

10. **सही विधि से बुवाई नहीं करनाः** इन फसलों की बुवाई, छिड़कवां विधि से की जाती है जिससे बीजों

का असमान वितरण होता है तथा अन्य सस्य क्रियाओं को करने में भी परेशानी होती है।

11. **राइजोबियम कल्चर का प्रयोग नहीं करना:** विभिन्न दलहन फसलों में राइजोबियम कल्चर का प्रयोग नहीं करने के कारण उपज में भारी कमी आती है।

12. **उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग:** फॉस्फेटिक उर्वरकों का दलहनी फसलों में प्रयोग किसानों के द्वारा बहुत कम ही किया जाता है, नाइट्रोजन उर्वरकों का प्रयोग भी नगण्य है या असंतुलित है।

13. **मिश्रित खेती:** अधिकतर दलहनी फसलों की मिश्रित खेती की जाती है क्योंकि इस पर पूर्ण प्रकाश नहीं पड़ने के कारण वृद्धि कम होती है। कुछ फसलों के साथ यह कम उपज देती है।

14. **जैविक तथा अजैविक दबाव:** दलहनी फसलों में विभिन्न कीटों एवं बीमारियों का अत्यधिक प्रकोप होता है तथा मौसम के प्रति कम सहनशीलता के कारण भी उत्पादन एवं उत्पादकता में कमी होती है, जिससे दलहन की खेती के प्रति किसान उदासीन रहते हैं।

15. **शिक्षा का अभाव:** किसानों में शिक्षा का अभाव है जिसके कारण वे कई तकनीकियों को पूरी तरह से समझ नहीं पाते हैं जैसे फसल में लगने वाले कीटों-बीमारियों आदि का सही ज्ञान न होने के कारण उचित समय पर फसल की सुरक्षा नहीं कर पाते हैं।

16. **दाल वाली फसलों का कम लाभ:** ये लागत अनुपात गेहूं व धान की तुलना में कम आकर्षक एवं कम आवश्यक होती हैं जिससे किसान इन फसलों को कम महत्व देते हैं।

17. **कटाई के बाद की तकनीकी:** किसानों के पास दलहनी फसलों की ओसाई करने एवं सुखाने के लिए भी आधारभूत ढ़ाँचों की कमी पाई जाती है जिस कारण उनके उत्पादन का सही मूल्य नहीं मिल पाता है।

18. **उचित भंडारण तथा भंडार तकनीकी का अभाव:** दलहन की स्थानीय स्तर पर उचित भंडारण की व्यवस्था नहीं होना तथा किसानों में भंडारण तकनीक के ज्ञान की कमी के कारण दलहनों की 40-50 प्रतिशत मात्रा किसान तुरंत कटाई के बाद कम मूल्यों में मंडियों में बेच देता है।

19. गेहूं व धान की अपेक्षा दलहनी फसलों के अनुसंधान में कमी है।

20. सरकारी बिक्री मूल्यों की समय पर घोषणा नहीं होने के कारण तथा सरकारी खरीद की सुविधा न होने के कारण किसान इन्हें कम महत्व देते हैं।

दलहनी फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए उपाय/सुझाव

1. दलहनी फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल बढ़ाया जाए यदि संभव नहीं हो तो दलहनी फसलों के बेकार/बंजर, नीची, ऊंची, अनुपयुक्त भूमियों को छोड़कर उपजाऊ एवं सिंचित दशाओं में उगाया जाए।
2. दलहनी फसलों के रोगरोधी उन्नतशील बीजों को समय एवं विधि से किसानों को उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
3. दलहनी फसलों को गन्ना, आलू आदि के साथ मिश्रित तथा सहफसल के रूप में उगाने पर बल दिया जाना चाहिए ताकि इसकी खेती व उत्पादन को बढ़ाया जा सके।
4. मृदा परीक्षण के आधार पर ही उर्वरक दें एवं संतुलित उर्वरक उपयोग करें तथा जैव उर्वरक जैसे; राइजोबियम कल्चर, वैम, पी.एस.बी. एवं एजोटोबैक्टर का प्रयोग करें।
5. किस्म का चुनाव जलवायु एवं मृदा के अनुसार करें।
6. फसल सुरक्षाओं में कीट, रोग, खरपतवारों आदि का समय से नियंत्रण करें।
7. 50 प्रतिशत फूल आने/फलियां बनने के समय कीटनाशी, कवकनाशी का प्रयोग करें यदि आवश्यक हो ता 15-20 दिन बाद पुनः छिड़कें।
8. संस्तुत बीज दर एवं पंक्तियों में बुवाई करें।
9. सिंचाई जब जरूरी हों, करें।

10. कम अवधि की जातियां प्रयोग करें।

11. फसल की बुवाई समय पर करें।

12. बुवाई के समय 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस 20 कि. ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें।

13. दलहनी फसनों के उत्पादन को उन्नत तकनीकी ज्ञान के प्रसार एवं प्रशिक्षण का उचित प्रबंधन करें ताकि किसानों को इनकी खेती का पूर्ण ज्ञान हो जाए और किसान इन्हें उगाने में कोई कठिनाई महसूस न करें।

14. दलहनी फसलों पर तकनीकी ज्ञान व नई किस्मों पर अनुसंधान के लिए पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराएं।

15. प्रत्येक दलहनी फसलों का सरकार लाभकारी मूल्य निर्धारित करे ताकि किसान दलहनी फसलों के उत्पादन में रुचि बढ़ा सकें।

दलहन एवं तिलहन फसलों की उत्पादकता बढ़ाने हेतु सरकारी प्रयास

विगत वर्षों में विभिन्न विज्ञानियों द्वारा योजना एवं समेकित अनुसंधान कार्यक्रमों से दलहनी फसलों में व्यापक अनुकूलनशीलता, उत्पादन में स्थायित्व, उत्पादकता वृद्धि, अल्पावधि गुण, जैविक एवं अजैविक कारकों के प्रति सहिष्णुता तथा बाजार की मांग के अनुरूप दानों के आकार एव रंग जैसे उल्लेखनीय सुधार लाने के प्रयास किए गए हैं। दालों के अंतरराष्ट्रीय आयात में कमी करने हेतु भारत सरकार ने भी क्षेत्र विस्तार और उत्पादन वृद्धि हेतु अनेक योजनाओं के अंतर्गत दाल विकास कार्यक्रम प्रारंभ किए थे। इसके बाद विशेष खाद्यान्न उत्पादन कार्यक्रम और समेकित तिलहन, दलहन, ऑयलपाम तथा मक्का योजना जैसी अनेक अन्य पहलें शुरू की गई। दालों की उपलब्धता बढ़ाने हेतु केंद्रीय सरकार ने एक बड़ा कदम उठाते हुए दालों के सुरक्षित भंडार को 1.5 टन से बढ़ाकर 8 लाख टन करने का फैसला किया है। बाद में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के अधीन पिछले कुछ वर्ष पहले दलहन फसलों की फसल पोषण और फसल केंद्रित सुधार तकनीकियों को प्रदर्शित करने के उद्देश्य के साथ त्वरित दाल उत्पादन कार्यक्रम नामक एक विशेष कार्यक्रम शुरू किया गया था इसका उद्देश्य चना, काला चना और हरे चने का उत्पादन बढ़ाना था। जैसा कि उल्लेख किया गया है सरकार ने दालों की कमी को दूर करने और मूल्यों से संबंधित सभी संभव प्रयास किए हैं।

दलहन में आत्मनिर्भरता हेतु भविष्य की रणनीतियां

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के अनुसार हमें वर्ष 2030 तक दलहन की आवश्यकता लगभग 32 मिलियन टन होगी। इस मांग की पूर्ति हेतु अनेक तकनीकी एवं संस्थागत उपायों को अपनाना होगा। दलहनों की उत्पादकता का स्तर वर्ष 2017-18 तक 853 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर से बढ़ाकर 900 कि.ग्रा. करनी होगी और इसकी वृद्धि की दर 4.5 प्रतिशत करना होगा। भारत में दलहन की कमी को दूर करने हेतु निम्न तथ्यों की भूमिका बनाकर अपनाने की आवश्यकता है।

1. फसल विविधीकरण में दलहनी फसलों को सम्मिलित करना।
2. सिंचित क्षेत्रों में खाद्यान्न फसलों के साथ दलहन उगाना।
3. जलवायु एवं मृदा के अनुसार ही दलहन उगाना।
4. उच्च उत्पादकता एवं कम अवधि की प्रजातियों का चयन करना।
5. दलहनी फसलों का बीजोपचार अवश्य करना।
6. समय पर उचित जल, पोषक तत्व एवं फसल सुरक्षा प्रबंधन करना।
7. जलभराव वाली स्थितियों में मेंड़ों पर बुवाई करना।
8. दलहनी फसलों की जैविक खेती करना।

दलहन प्रकृति का स्वाभाविक वरदान है। खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के अतिरिक्त टिकाऊ खेती तथा फसल विविधीकरण में भी दलहनी फसलों का अप्रतिम योगदान है। इसको कम लागत पर आसानी से खेत पर उगाया जा सकता है। यदि हमें दलहन में आत्मनिर्भर होना है, तो विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी सुझावों को अपनाना होगा।

प्रकृति का बहुमूल्य वरदान : गुलाब से सुगंधि

नमिता, एम. के. सिंह, एस. एस. सिंधु, ऐ. एस. धामा, हरेन्दर यादव एवं आशा कुमारी

पुष्प विज्ञान एवं भूदृश्य निर्माण संभाग,
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

सुगंधि मन को मोहती है और स्मृतियों तथा मनोभावों को जागृत करती हैं अथवा कार्य करने का मन बनाने में सहायक होती है। गुलाब की सुगंधि ही केवल ऐसी है जिससे मानव घ्राणशक्ति कभी भी नहीं थकती है। अन्य खुशबू देने वाली सामग्रियों से निकलने वाली कुछ हानिकारक दुर्गंध जीवन के लिए संकटकारी हो जाती हैं क्योंकि इनकी अधिकता से मानव के सूंघने की संवेदना प्रणाली अपना कार्य करना बंद कर देती है। लेकिन गुलाब से हमारी नाक कभी भी नहीं थकती है। अधिकतर गुलाबों से सुगंधियां पंखुडियों की निचली सतहों और रोयेंयुक्त ग्रंथियों से निकलती हैं। सुगंधि की मात्रा कई कारकों द्वारा निर्धारित होती है जिनमें गुलाब की किस्में और जलवायुवीय दशाएं प्रमुख हैं। गुलाब के फूल कीटों को परागण के लिए आकर्षित करने के लिए सुगंधि उत्पन्न करते हैं। मानव जिन पदार्थों की गंध को पहचानता है वे समान्यतः तेल में घुलनशील होते हैं। इसके विपरीत वे पदार्थ जिन्हें मानव स्वाद के द्वारा पहचानता है जल घुलनशील होते हैं। वाष्पशील पादप तेलों में पाई जाने वाली गंध धूप और गर्म मौसम में मोचित होती है। आर्द्रता से गंध लंबे समय तक बनी रहती है क्योंकि यह वाष्पन की दर को कम करती है।

फ्रांस व अन्य देशों में रोज़ा डेमासेना के बड़े खेतों में हजारों टन गुलाब की पंखुड़ियों का उत्पादन किया जाता है जिनसे करोड़ो का इत्तर पैदा किया जाता है। रोज़ा सेन्टीफोलिया में बहुत तेल होता है पर इसे वाष्प आसवन का प्रयोग करके निकालना कठिन है। अब आधुनिक निष्कर्षण विधियों द्वारा इस समस्या का हल मिल गया है। मस्क गुलाब रोज़ा मोस्चाटा तीखी गंध देता है पर यह अरूचिकर नहीं होती है। टीज और चीनाज के आ जाने के कारण वर्तमान गुलाब की सुगंधि में वास्तविक गहराई आ गई है। रोज़ा रूगोजा तेज मीठी सुगंधि देती है । इसके साथ ही हमारे अपने देशी वन्य गुलाबों ने भी सुगंधि में अपना योगदान दिया है। चीन के गुलाबों में से डीप साऊथ गुलाब लेडी बैंकसियाष ने हमारे यहां स्थान बना कर अपना प्रभाव छोड़ा है और इसमें बैंगनी फूल होते हैं। गुलाबों में सुगंधि के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए डॉ गेम्बल ने अमेरिकी रोज सोसाइटी को धन देकर उन संकर उत्पादकों को पुरस्कार देने को कहा जो अद्वितीय सुगंधि और वृद्धि स्वभाव वाले गुलाबों को उत्पन्न करती हैं। 1953 से अनेक लोगों ने इस पुरस्कार को जीता है। इन गुलाबों में डबल डिलाइट, फ्रेगरेन्ट क्लाऊड, टिफनी और क्राइसलर इंपीरियल प्रमुख हैं।

रोज़ा डेमासेना

रोज़ा रूगोजा

रोज़ा ब्रुनोनी

चित्र: सुगंधि उत्पन्न करने वाली प्रजातियां

गुलाब की वास्तविक सुगंधि एल्कोहल और शर्कराओं के तेल-आधारित यौगिकों से उत्पन्न होती है जो पंखुडियों की सतह के निकट क्लोरोप्लास्टो में उत्पन्न और संयोजित होते हैं। गुलाब के खिलने के समय सुगंधि परिवर्तित हो सकती है। इसके अतिरिक्त सूर्य, मृदा और पी एच तथा पर्याप्त जल भी महत्वपूर्ण कारक हैं। जब अतिरिक्त नमी उपस्थित होती है तो क्लोरोप्लास्टों में सुगंधि सामग्री बढ़ती है और अतिरिक्त सुगंधि मिलती है। इसी प्रकार गुलाब की सुगंधि का रसायनशास्त्र बहुत जटिल मिश्रण है जिसे पुराने लोग "आवश्यक तेल" कहते हैं। इनमें सबसे अग्रणी रोडीनॉल है और जैसा नाम से पता चलता है इसमें "गुलाब" के समान गुण है और इसकी अद्भुत सुवास को हम "ओल्ड रोजेज" कहते हैं। जिरेनियॉल जिरेनियम की पत्तियों की सुगंधि है, नीरॉल मेग्नोलियाजा और हमारे आधुनिक पीले और नारंगी गुलाबों का एसेन्स है, यूजीनॉल मसाला सुगंधि के रूप में जानी जाती है, यह लोंग के तेल से मिलती है। अन्य बड़ी सामग्री, फिनाइल इथायल एल्कोहल हैं और 'गुलाब' के समान गुण रखती है लेकिन यह तनु और कम होता रूप है। सबसे सामान्य गुलाब सुगंधियों में एपल, क्लोवर, लेमन, नेस्टरसियम, ओरिस (आइरिस जड़) और वोयलट प्रमुख हैं। अन्य में हरी चाय की पत्तियां, लोंग, रसभरी, वे.स्पाइस, मस्क, पार्सले, वाइन, लिली ऑफ दी वेली, अलसी का तेल, खुबानी, क्विंस, जिरेनियम, पेपर्स, मेलान, मिर्र, इत्यादि हैं।

आवश्यक तेल जिन्हें एसेन्स भी कहते हैं अत्याधिक सांद्रित पदार्थ हैं। इन्हें सुगंधित पौधों और पेड़ों के विभिन्न भागों से निष्कर्षित किया जाता है। इन्हें प्रायः वाष्प आसवन द्वारा एकत्रित किया जाता है। दामस्क गुलाब का तेल सुबह की ओस के बाद और दिन में अधिक गर्मी होने से पूर्व पंखुडियों में सांद्रित होता है। अधिकतर तेलों में कई सौ घटक होते हैं जो कि टरपीनों, एल्कोहलों, एल्टीहाइडों और एस्टरों में उपस्थित होते हैं। इस कारण एक तेल कई किस्म के विकारों में सहायता कर सकता है। उदाहरणतय गुलाब एंटीसेप्टिक, एंटीबैक्टीरियल, एंटीबायोटिक, तनावहारी, दर्दनिरोधी, डीकंजेस्टेन्ट और सेडेटिव गुणों से भरपूर है।

गुलाब का आवश्यक तेल तथा इसके प्रयोग

दामस्क गुलाब का तेल गहरा, गुलाबी, ताजा सुगंधि युक्त, रंगहीन से मंद पीला अथवा हरापन लिए होता है जिस की विस्कासिता गर्म अथवा ठंडा होने पर क्रमशः जलीय से क्रिस्टलीय होती है। लगभग साठ हजार गुलाबों (लगभग 180 पौंड) से लगभग 28 ग्राम्स (1 औंस) गुलाब का तेल प्राप्त होता है। गुलाब ओट्टू तेल ताजा फूलों से निष्कर्षित किया जाता है जिन्हें 8 बजे सुबह से पूर्व तोड़ लिया जाता है। वाष्प आसवन के द्वारा निष्कर्षण से 0.02-0.05% तेल की प्राप्ति होती है। यदि आसवन के समय ताप बहुत अधिक होता है तो सुगंधि क्षतिग्रस्त हो सकती है। सिट्रोनेलोल, जिरेनिओल, निरॉल, फार्नीसोल, जेरेनिक और यूजीनोल गुलाब ओट्टू तेल के मुख्य रासायनिक घटक हैं।

चिकित्सीय गुण

दामस्क गुलाब के तेल में विरोधी, तनाव-हारी, एंटीसेप्टिक, पीड़ाहारी, लैंगिक उत्तेजनावर्धक, एस्ट्रिंजेन्ट, जीवाणुनाशी, डाइयूरेटिक, इमेनागोगू, हिपेटिक, लेक्जेटिव, सेडेटिव, स्पलीनेटिक और सामान्य टॉनिक जैसे चिकित्सीय गुण हैं। दामस्क गुलाब के तेल से मस्तिष्क शांत होता है और तनाव, दुख, मानसिक पीड़ा और प्रतिबल में लाभ मिलता है। साथ ही यह रक्त-संचार और हृदय की धड़कनों में लाभ देता है। गुलाब का तेल ठंडक, हल्कापन और रंगत प्रदान करता है। इसके तेल का प्रभाव बर्गेमोट, जिरेनियम और चमेली के समान ही होते हैं। गुलाब के तेल को तनाव से संबंधित विकारों के उपचार के लिए उपयोग करते हैं और बच्चों की अतिक्रियाशीलता के लिए

भी उपयोग किया जा सकता है। गुलाब का प्रजनन और लैंगिकता पर भी बहुत प्रभाव पड़ता है। यह मासिक स्त्राव बंद वाली और अधिक मासिक स्त्राव वाली महिलाओं दोनों के लिए ही लाभकारी है। गुलाब एंटीसेप्टिक और एंटीइन्फ्लेमेटरी गुणों के साथ ही पाचन विकारों जैसे गेस्ट्रोएन्टेरिटिस और आमाशय के अल्सर में भी लाभकारी है। यह मिचली (उबकाई) और आंत्र की क्षतिग्रस्त भित्तियों को ठीक करने में सहायक है। गुलाब को त्वचा की समस्याओं के उपचार में भी उपयोग किया जा सकता है। इसके नवयौवन देने वाले गुणों से त्वचा का सूखापन, दाग, गर्मी और खुजली दूर होती है। साथ ही यह एंटीवायरल, एस्ट्रिनजेन्ट, जीवाणुनाशी, कोलेरेटिक, सिसिट्रीसेन्ट, डेपूरेटिव, इमेनागोगू, हीमोस्टस्टिक, भूख का नियंत्रक और सेडेटिव भी है। यह हृदय, यकृत, गर्भाशय और पेट के लिए भी अच्छा टॉनिक है। गुलाब ओट्टू तेल ल्यूकोरिया, मीनेरेजिया और गर्भाशय के विकारों के लिए भी लाभदायक पाया गया है। गुलाब जल कंजेक्टाइविटीज के लिए उपयोग होता है। यह रक्त संचार में भी लाभ देता है। इससे खराब रक्त संचार, धड़कन, पेशियों और जोड़ो के दर्द में लाभ होता है। श्वसन संबंधी विकारों जैसे दमा, खांसी और हे ज्वर में लाभकारी है। वाष्प चिकित्सा में गुलाब ओट्टू तेल सहायक हो सकता है, विशेषकर यह एलर्जी, दमा बेबी ब्लू, सिरदर्द, माइग्रेन, मानसिक तनाव में शिथलनकारी पाया गया है।

मिश्रित तेल और स्नान में प्रयोग

गुलाब के तेल को मालिश के मिश्रित तेल में प्रयोग करते हैं। साथ ही स्नान के जल में उपयोग करने से एलर्जी, बेबी ब्लू, दमा, हे ज्वर, सिरदर्द, उदासी, माइग्रेन, दाग ऊतक, मानसिक तनाव, प्रतिबल, खराब रक्त संचार में लाभ होता है। यह शरीर को हल्कापन प्रदान करता है। गुलाब के तेल को अधिकतर तेलों के साथ मिला सकते हैं। यह लोंग, जिरेनियम, चमेली और पाल्मरोज़ा के तेल के साथ बहुत अच्छा मिश्रण बनता है।

गुलाबों में सुगंधि से संबंधित कुछ तथ्य

सामान्यता सबसे अधिक सुगंधि वाले गुलाब वे होते हैं जिनमें गहरा रंग और फूल में अधिक पंखुडियां होती हैं अथवा मोटी मखमली पंखुडियां होती हैं। दूसरे सहसंबंध में लाल और गुलाबी गुलाब सुगंधित होते हैं जबकि सफेद और पीले गुलाब ओरिस, नेस्टरसियम, वायलेट अथवा नींबू के समान गंध देते हैं। नारंगी-आभा वाले गुलाबों में प्राय फलों, ओरिस, नेस्टरसियम, वायलेट, अथवा लोंग के समान सुगंध होती है। गुलाब की सुगंधि गर्म और धूप वाले दिनों तथा भूमि में नमी होने पर अधिक होती है क्योंकि इन अवस्थाओं में सुगंधि देने वाली सामग्री फूलों में बढ़ जाती है। प्रायः गुलाब में जो सुगंधि सुबह होती है शाम तक नहीं रहती है। गुलाब की 'क्राइसलर इंपीरियल' और 'सुत्तर्स गोल्ड' किस्मों पर मौसम का प्रभाव नहीं पड़ता है और ठंडे तथा बदली वाले दिनों में भी सुगंधि स्थायी रहती है। किस्म 'क्राइसलर इम्पीरियल' के साथ साथ 'मस्टर लिंकन' तेज सुगंधि बनाए रखते हैं। सुगंधि के साथ महत्वपूर्ण पहलू इसका रोग से प्रभावित होना है। आसिता रोग से सुगंधि में कमी आती है। गुलाब के वर्गों और सुगंधि तथा गुलाबों के रोगों और सुगंधि में संबंध पाए गए हैं। इन खोजों में कुछ आनुवंशिक तथ्य भी हैं। गुलाबों के वर्ग विशेषकर ओल्ड गार्डन गुलाबों में कुछ विशिष्ट रंगों का परिसर पहचाना गया है जिनमें विशेष सुगंधि होती है। गेलिका गुलाब क्रिमसन, गहरे गुलाबी, मोव और स्ट्राइपों और स्प्लेशों वाले रंग के होते हैं। ये पुराने गुलाब सुगंधियों के लिए वर्णित लिए जाते हैं जो कि तीव्र और मसालों की गंध के समान हो सकते हैं। दामस्क गुलाब सफेद से गहरे गुलाबी होते हैं जिनमें असामान्य सुगंधि होती है जो प्रायः फलों की सुगंधि से मिलती है।

सुगंधित गुलाब

अब तक वर्णित गुलाबों के अतिरिक्त हाइब्रिड टी और ग्रांडी फ्लोरा गुलाबों में भी महत्वपूर्ण सुगंधिया पाई गई हैं। इन गुलाबों में एरीजोना, कमांड परफोर्मेंस, इलेक्ट्रॉन, फ्रेंडशिप, लव, परफ्यूम डिलाइट, सनडाऊनर, शीर ब्लिस, स्वीट सरंडर और कुछ सुगंधित फ्लोरीबन्डों में एन्जेल फ्रेश, एप्रीकोट नेक्टर, केथेड्रल, चेरिस, इन्ट्रीग और सेराटोगा, तथा व्हाइट अमेरिका (मसालें वाली सुगंध युक्त लता गुलाब) सम्मिलित हैं। यह आम धारणा है कि लघु रूपी गुलाब अन्यथा बहुत ही आकर्षक और अनुकूलित

बगीचे के पौधे होते हैं और उनकी लोकप्रियता बहुत होती है लेकिन इनमे सुगंधि नहीं पाई जाती है। परंतु आकार का छोटा होना अपेक्षाकृत सार्वभौमिक नहीं है यद्यपि कि 'डबल व्हाइट लेडी बेंक्स रोज' (रोज़ा बैंकसी बैंक्सी), 'अगेती नाइजेटी रोजेज' और बोने सेन्टीफोलियाज 'पेटाइट डी होलेण्डी' और 'डी मेक्स' सभी सुगंधित हैं जबकि इनके फूल आज के लघुरूपियों से बड़े नहीं होते हैं। वर्ष 1984 में राल्फ मोरे के द्वारा प्रवेशित "सुईट चेरीऔट" नामक "ओल्ड गार्डन गुलाबों" गुलाब के प्रवेशन का प्रमुख उदाहरण है। ये तेज सुगंधि वाले हैं जिनके खिलने पर चेरी-केंडी सुगंधि दूर तक पहुंचती है।

विभिन्न प्रजातियों की कृषि किस्मों से निष्कर्षित आवश्यक तेल उस प्राकृतिक सुवास (महक) (सारणी 1) को प्रदर्शित करते हैं जो फलों, चाय, केला, बालसम आदि की - लक्षणिक सुवासों से मिलती हैं।

सुवास (महक)	उत्पन्न करने वाली प्रजातियां/संकर/किस्म
बादाम	रोजेरी डी ला हे
सेब	रोज़ा एगलेन्टेरिया और इनके संकर, रोज़ा विचूरियाना और इनके संकर, एपल जैक, निम्केनवर्ग, राल्फस क्रीपर, क्वीन मार्गरेट, मेक्स ग्राफ, कोक्यूटीस डी ब्लैंक, कोरल डॉन, न्यूडॉन, चेरी लुइस - फिल्पी।
बालसम	रोज़ा रूगोसा रूब्रा, रोज़ा मसकोसा परपूरिया, रोज ए परफ्यूम, रोज़ा गेलिका और रोज़ा डेमासेना।
केला	रोज़ा मुलिगानी, वारविक केसल।
इलायची	रोज़ा चिनामोनया।
लोंग	प्रिटज नोविस, रोज़ा रूगोसा और इसके संकर, ब्लश नोइजेटी।
दामस्क	दामस्क और पोर्टलेण्ड गुलाब।
डाइएन्थस	सेफरानो।
पुष्पीय	स्पीशीज संकर और रेम्बलर्स ।
फल एवं मसालें	एन्जेल फेश, लेवेन्डर लेसी - हाइब्रिड टी (आधुनिक अंग्रेजी गुलाबों) में भी अनेक फलीय सुवास की उपस्थिती का मान मिलता है। जूडे दी ओव्सक्यूर क्लेमेन्टाइन्स, हनी, वनीला और यहां तक कि अमरूद का मान देता है।
गार्डेनिया	व्हाइट डॉन, रोज़ा लीविगेटर (चीरोकी गुलाब)।
हर्ब और मसालें	मोसेयारे टिलियर।
शहद	रोज़ा मोस्चाटा का सुगंधि विदेशी शहद की भांति वर्णित की गई है।
शहद और चाय	एल्चीमिस्ट।
शहद, गोरमीट पोपकार्न	हनीस्वीट।
हनीसकल	फ्रेन्सेस्का।
हाइसिन्थ	कुइसे डी निम्क।
नींबू	ममीहार्डी, पार्सन्स पिंक चाइना, रोज़ा ब्रेक्टी (मेककर्टिनी गुलाब), सुत्तर्स गोल्ड, हेरीटेज, स्लेटर्स क्रिमसन चाइना, एप्रीकॉल, लेडी हिलिंग्डन।
नींबू और मसालें	मार्गरेट मेरिल।
नींबू, चाय और सेब	सोम्बरीउइल।

लिली ऑफ दी वेली	रोज़ा निटिडा।
मिश्रित फल	चाइनाज और हाइब्रिड मास्क।
मिश्रित फल	एब्राहम डर्बी, सुत्तर्स गोल्ड, एल्बेरिक बार्बिअर, कार्नेलिया, क्रेमोइसी सुपरियर ओल्ड पिंक मॉस, डेप्रेज ए फ्लीडर्स जोनेस, एल्बर्टाइन।
मस्क	रोज़ा मोस्चाटा, रोज़ा मल्टीफ्लोरा, रोज़ा फीरेसिया, 'नस्टाराना', रोज़ा मुलीगानी, रोज़ा सेमपवीरेन्स।
मस्क और लोंग	रोज़ा ब्रूनोनी (हिमालय मस्क गुलाब) और संकर, रोज़ा मोस्चाटा (मस्क गुलाब) और संकर, पेनीलोप, बोबी जेम्स ब्लश नोइसेटीस, मेरी पेवी।
मस्क और अनानास	ट्रायर।
मिर्र	फ्लोरीबंडाज और ऑस्टिन्स बेले आइसिस, कोन्स्टान्स स्प्राइ, वाइफ ऑफ बाथ, डिस्टेन्ट ड्रम्स।
नारसीसस	हेलिओट्रोपी कार्नेलिआ।
संतरा	ग्रेनी ग्रिमेटस, वेलचेनब्लाऊ, बोबर्न एब्बी।
आड़ू	चाइना टाऊन, सिटी ऑफ ग्लोस्टर।
काली मिर्च	वार्वोन मेगी और 'ला रेनी डेस वायलेटीस' दोनों की ही सुगंधि काली मिर्च की तरह होती है।
अनानास	रोज़ा मल्टीफ्लोरा, बनाना वफब्यूटी।
रसभरी	सेरिसी बकेट, होनेराइन डी बार्बेन्ट, मेमी इजाक पेयरे, डचेज डी ब्राबेन्ट।
विभिष्ट महक	
मसालें	बेले आमूर और इसके संकर।
स्ट्राबेरी	क्राईसलर इंपीरियल, मेरीकल नील।
स्वीट पी	मेमे ग्रीगोइर स्टीचेलिन (स्पेनिश ब्यूटी), ओल्ड ब्लश।
चाय	टीज, नोइसेटीस और हाइब्रिड टीज 'ग्लोरी डी डिजान', 'सफ्रानो' 'लेडी हेलिंग्डन' 'जेनी ऑस्टिन', 'व्हाइट'।
चाय और सेब	मेमन कोचेट, सोवेनियर डी मेमे बुलेट, मेरीकल नील गार्डेनिआ।
चाय और संतरा	एवरेस्ट, डबल फ्रेगरेन्स।
चाय और अनानास	ब्रेक ओ डे।
मदिरा और मसाले	टी और मस्क गुलाबों से मास्केटेल की भांति सुगंध आ सकती है, कुछ हाइब्रिड मास्को में चाय और मस्क दोनों की ही मिश्रित सुगंध होती है। कुछ गहरे बैंगनी - लाल गेलिकाओ के समान टस्केनी में मदिरा के समान सुगंध दिखाई देती है।

(स्रोत: चौधरी एवं प्रसाद, 2006)

सुगंधित गुलाबों के लिए पुरस्कार

नए अद्‌वितीय बहुत अधिक सुगंधि देने वाले गुलाबों को जेम्स एलेक्जेन्डर गेम्बल फ्रेगरेन्स मेडल प्रदान किया जाता है। इनका चयन ए आर एस प्राइजेज और एवार्ड कमेटी पूरे यूनाइटेड स्टेटस (अमेरिका) की सभी नगरपालिकाओं और निजी बगीचों में पांच वर्ष की अवधि तक सबसे अच्छी सुगंधि देने वाले गुलाबों के लिए करती है। गुलाब पंजीकृत होने चाहिए और उनको कम से कम 8.0 ग्रेड का आंका जाना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि गुलाब प्रति वर्ष ही मेडल के लिए चुना जाए। पुरस्कार

केवल तभी दिए जाते हैं जब वास्तव में नई सुगंधित किस्म उपलब्ध होती है। भारत वर्ष में श्द रोज सोसाइटी ऑफ इंडियाश् की वार्षिक गुलाब प्रदर्शनी में गुलाब की नई सुगंधित संकर/किस्म के निर्माता को पुरस्कार दिया जाता है। सुगंधित गुलाबों की पुरस्कार जीतने वाली कुछ अद्वितीय किस्में सारणी 2 में दर्शायी गई है।

सारणी 2. पुरस्कार जीतने वाले सुगंधित गुलाब की किस्में

गुलाब की किस्म	संकर/किस्म निर्माता	वर्ष
क्रिमसन ग्लोरी	बिलहेला कोर्डेस	1961
टिफनी	रोबर्ड लिंडक्विस्ट	1962
क्राइसलर इम्पीरियल	डा. वाल्टर इ. लेम्मर्टस	1965
सुत्तर्स गोल्ड	हर्बर्ट सी स्विम	1966
ग्रानाडा	रोबर्ट लिंडक्विस्ट	1968
फ्रेगरेन्ट क्लाऊड	मथाइस टानटाऊ	1970
पापा मीलेन्ड	एलेन मीलेन्ड	1974
सनस्प्राइट	विलहेल्म कोर्डेस	1979
डबल डिलाइट	हर्बर्ट सी स्विम और अर्नाल्ड डब्लू इलिस	1986
फ्रेगरेन्ट आवर	सेम मेकग्रीडी प्ट	1997
ऐंजल फेश	बर्हर्ट सी स्विम और ओलिवर वीक्स	2002

(स्त्रोत: चौधरी एवं प्रसाद, 2006)

क्रिमसन ग्लोरी

टिफनी

क्राइसलर इंपीरियल

सुतर्स गोल्ड

ग्रानाडा

फ्रेगरेंट क्लाऊड

पापा मीलेन्ड

सनस्प्राइट

डबल डिलाइट

जब हम गुलाब के फूलों के संपर्क में आते हैं तो स्वतः ही उन्हें सूंघने की इच्छा होती है। चाहे इनमें सुगंध हो अथवा ना हो। अंतरराष्ट्रीय बाजार में, आधुनिक फूल व्यवसाय में आज लंबी अवधि, धीरे से खुलने वाले गठित और नुकीली कलिकाओं वाले फूलों को पसंद किया जाता है और सुगंधित गुलाबों की मांग पीछे हो गई है। इसके बाद भी भारत में बगीचों एवं खुले फूलों के व्यवसाय के लिए सुगंधित गुलाबों की किस्मों के विकास के लिए प्रजनन प्रोग्राम चलाया जा रहा है। अतः अधिक सुगंधित कृषि किस्मों/संकरों के विकास के प्रयास जारी हैं। भा.कृ.अनु.प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा कई गुलाब की किस्मों का निर्माण किया है। जिसमें सुगंधित किस्में, रोज़ शरबत, पूसा अल्पना (खुले फूलों हेतु), पूसा महक, जवाहर, रक्तिमा, सुंगधा (बगीचों में लगाने हेतु), इत्यादि हैं।

रोज़ शरबत

पूसा अल्पना

पूसा महक

जवाहर

रक्तिमा

सुगंधा

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित सुगंधित किस्में

मुठ्ठी भर संकल्पवान लोग जिनकी अपने लक्ष्य में दृढ़ आस्था है, इतिहास की धारा को बदल सकते हैं।

- महात्मा गांधी

हरी सोयाबीन- एक स्वास्थ्यवर्धक एवं अर्थकारी फसल

राहुल कुमार, अरूण कुमार, मोनिशा सैनी, मनियारी ताकू, अक्षय तालुकदार

आनुवंशिकी संभाग, राष्ट्रीय फाइटोट्रॉन सुविधा
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

हरी या सब्जी सोयाबीन अथवा एडामेम साधारण तिलहनी सोयाबीन प्रजातियों जैसी ही है। फर्क सिर्फ इतना है कि इसे फली के पूर्ण परिपक्वता तक पहुंचने से पहले ही तोड़कर खाने में इस्तेमाल किया जाता है। इसके ताजे हरे बीज आम तौर पर बड़े और स्वाद में मीठे होते हैं। हरी सोयाबीन की अपरिपक्व फलियों को हल्के नमकीन पानी में उबालकर और निकाले गए बीजों की ताजी सब्जी के रूप में सेवन किया जाता है। इस प्रकार का भोजन प्रोटीन, मोनो-असंतृप्त (अनसैचुरेटेड) वसा अम्ल, विटामिन-सी, फाइबर, लौह (आयरन), जस्ता (जिंक), कैल्शियम, फॉस्फोरस, फोलेट, मैग्नीशियम, पोटैशियम, टोकोफेरोल और कैंसर रोधी आइसोफ्लेवोन्स प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराता है। साथ-साथ इसका मनोरम स्वाद एवं नाजुक संरचना और इससे आसानी से पका कर भोजन तैयार की क्षमता वाले गुण इसे और अधिक उपयोगी बनाता है। सभी सोया उत्पादों में, पकी हुई सोयाबीन की सब्जी का शुद्ध प्रोटीन उपयोग मूल्य, (एन.पी.यू.- प्रोटीन में परिवर्तित अमीनो अम्ल/एसिड का अनुपात), सबसे अधिक पाया गया है। हरी मटर की अपेक्षा हरी सोयाबीन में 60% अधिक कैल्शियम एवं दोगुना फॉस्फोरस और पोटैशियम का स्तर मौजूद होता है। हरी सोयाबीन का विकास चक्र छोटा (कुल 65-75 दिन मात्र) होता है, जिससे इसे विभिन्न फसल क्रमों में उगाए जाने की संभावनाएं बढ़ जाती है। हरी सोयाबीन प्रति इकाई क्षेत्र में सबसे अधिक फसल प्रोटीन का उत्पादन करता है। भारत को हरी सोयाबीन की फसल को बड़े पैमाने पर अपनाने और खाने में इसके प्रचुर इस्तेमाल से प्रोटीन और लौह (आयरन) की कमी को दूर करने में मदद मिल सकती है। इस दिशा में किए गए प्रयासों के फलस्वरूप ही हरी सोयाबीन की उन्नत किस्मों का विकास एवं उत्पादन प्रारंभ हुआ है।

आर्थिक महत्व

हरी सोयाबीन या एडामेम का उपयोग पहली बार लगभग 200 ई.पू. के दौरान एक औषधीय फसल के रूप में दर्ज किया गया था। इसकी खेती पूरे पूर्वी एशिया में पीढ़ियों से की जाती रही है । जापान एडामेम का सबसे बड़ा व्यावसायिक उत्पादक है। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी हरी सोयाबीन लगातार लोकप्रियता प्राप्त कर रही है। पौष्टिक-औषधीय (न्यूट्रास्युटिकल) के रूप में सोयाबीन की बढ़ती लोकप्रियता के कारण वर्तमान में हरी सोयाबीन की मांग पुरजोर बढ़ रही है। एफ.डी.ए. द्वारा हाल ही में सोयाबीन प्रोटीन के अर्क को पोषण संबंधी पूरक के रूप में मंजूरी देने से सोया खाद्य पदार्थों की मांग और भी अधिक बढ़ गई है। अधिकांश एशियाई देशों में, विशेष रूप से जापान में, सोयाबीन की हरी फली और ताजे बीज से प्राप्त उत्पाद की उच्च मांग है।

कार्यात्मक खाद्य फसल

सोया खाद्य पदार्थों में पाए जाने वाले आइसोफ्लेवोन्स, प्रोटीन और विशिष्ट ओलिगोसेकेराइड्स को मनुष्यों में विभिन्न प्रकार के स्वास्थ्य लाभों से जोड़ा गया है। नैदानिक शोधों से प्रदर्शित किया गया है कि सोयाबीन प्रोटीन में आइसोफ्लेवोन्स रक्त सीरम कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में सक्षम है, जिससे मनुष्यों में कोलेस्ट्रॉल के दुष्प्रभाव से रक्तधमनियों में उत्पन्न अवरोधों के कारण होने वाले हृदय रोग के जोखिम को कम किया जा सकता है। सोयाबीन आइसोफ्लेवोन्स हानिकारक कम घनत्व वाले लिपिड (एल.डी.एल.) कोलेस्ट्रॉल को कम करता है एवं गुणकारी उच्च घनत्व वाले लिपिड (एच.डी.एल.) कोलेस्ट्रॉल को बढ़ाने में मदद करता है। सोयाबीन आइसोफ्लेवोन्स कैंसर की रोकथाम, मधुमेह प्रबंधन, हड्डियों के घनत्व में वृद्धि और ऑस्टियोपोरोसिस को

रोकने में भी मददगार साबित हुआ है। सोयाबीन के सुप्रचारित पौष्टिक-औषधीय लाभों के कारण, भविष्य में लंबे समय के लिए सोया खाद्य पदार्थों की मांग में वृद्धि जारी रहने की उम्मीद है।

पोषाहार संरचना

ताजी हरी सोयाबीन के बीजों में 35 से 38 प्रतिशत प्रोटीन (सूखे वजन के आधार पर) और 5 से 7% लिपिड होता है। ताजे हरे बीजों से प्राप्त लिपिड में मोनो-असंतृप्त (अनसैचुरेटेड) वसा अम्ल का उच्च अनुपात होता है, जोकि हरी सोयाबीन को एक स्वास्थ्यवर्धक हलका भोज्य पदार्थ बनाती हैं। सोयाबीन आइसोफ्लेवोन्स के कुछ प्राकृतिक स्रोतों में से एक है, जिसमें आइसोफ्लेवोन (78 से 220 मिलीग्राम / 100 ग्राम सूखे बीज में) और टोकोफेरोल (विटामिन-ई) (आइसोफ्लेवोन प्रकार के आधार पर 84 से 128 मिलीग्राम / 100 ग्राम सूखे बीज में) पाया जाता है। हरी सोयाबीन और अन्य हरी फलियों वाली फसलों का सापेक्ष पोषण सामग्री नीचे दी हुई तालिका सं. 1 में सूचीबद्ध है।

कृषि शाकीय महत्त्व

सोयाफूड के लिए सोयाबीन की उन्नत किस्मों में घरेलू और विश्वव्यापी सोयाबीन बाजारों को विकसित करने की अपार क्षमता है। हरी सोयाबीन एक कम लागत वाली एवं मृदा को समृद्ध करने वाली दलहनी फसल है। विशेष गुणों वाली हरी सोयाबीन संयुक्त राज्य अमेरिका में एक विशिष्ट बाजार वाली फसल है, जो दलहनी सोयाबीन के बाजार मूल्य से $18 से $589 / टन का प्रीमियम प्राप्त करती है। भारत में भी गुणकारी हरी सोयाबीन के ग्राहकों की संख्या में दिनों-दिन बढ़ोतरी हो रही है। वर्तमान में प्रजनन के माध्यम से ताइवान स्थित एशियाई शाकीय अनुसंधान एवं विकास केंद्र (एशियन वेजिटेबल रिसर्च एंड डेवलपमेंट सेंटर) तथा भारत के विभिन्न शोध संस्थानों द्वारा विकसित उच्च फली पैदावार और अधिक बायोमास वाली एडामेम किस्मों की खेती की जा रही है। ये खेती फली उत्पादक और हरी खाद फसल, दोनों के रूप में अपना योगदान प्रदान कर रही है। यह मिट्टी की संरचना और स्थिरता में सुधार करते हुए मिट्टी के पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन और कार्बनिक पदार्थों की भी भरपाई करती है। एडामेम किस्में अपने छोटे जीवन काल के कारण मौजूदा फसल चक्र प्रणाली में अच्छी तरह से समायोजित की जा सकती हैं।

भारत में हरी सोयाबीन की खेती मुख्य रूप से झारखंड, बिहार, हैदराबाद और इनसे लगे सीमावर्ती राज्यों में की जाती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ने 2001 में पहली हरी सोयाबीन किस्म, 'हिम्सो

तालिका सं. 1: हरी सोयाबीन और अन्य बीन्स में उपलब्ध पोषक तत्वों की तुलना

फसल शुष्क	पदार्थ (ग्राम)	प्रोटीन (ग्राम)	तेल (ग्राम)	कैल्शियम (मिलीग्राम)	लौह (मिलीग्राम)	जस्ता (मिलीग्राम)	विटामिन-ए (एमसीजी-आर.ए.ई.)	विटामिन-सी (मिलीग्राम)	फोलेट (एमसीजी)
हरी सोयाबीन	33	40	13	606	11	3	28	89	508
अंकुरित मूंग	10	32	2	135	9	4	10	138	635
चना	88	22	7	119	7	4	3	5	630
लोबिया	89	27	2	96	11	7	2	2	718
मूंगफली	94	28	53	98	5	3	0	0	257
अरहर	34	21	5	123	5	3	9	114	557

मात्रा प्रति 100 ग्राम कच्चे उत्पाद (शुष्क वजन के आधार पर), स्रोत: यू.इस.डी.ऐ. (2010)

1563' जारी की जो 100-120 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है और प्रति हेक्टेयर 5 टन उपज प्रदान करती है। इंदौर स्थित भा.कृ.अनु.प.- भारतीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान केंद्र द्वारा विकसित की गई हरी सोयाबीन का आनुवंशिक रूप, एन.आर.सी. 105 है, जिससे औसतन 3.9 टन / हेक्टेयर के उत्पादन लेने की क्षमता के साथ 60 दिनों में तोड़ने योग्य हरी फलियां प्राप्त की जा सकती है।

एडामेम पकाने की विधि

एडामेम बनाने के लिए हरी सोयाबीन की फलियों को पूर्ण परिपक्वता तक पहुंचने से पहले ही तोड़ लिया जाता है। फलियों को बर्तन में चुटकी भर नमक के साथ या फिर बिना नमक के पानी मे उबाला जाता है और 3 से 5 मिनट तक पकने के बाद बर्फ के ठंडे पानी में एक या दो मिनट रखने के उपरांत छान कर ठंडा किया जाता है। इसके अलावा सह-भोजन के रूप में भी, बीन्स को थोड़े जैतून के तेल और नमक के छिड़काव के साथ टॉस किया जा सकता है। हरी सोयाबीन को सलाद या मिश्रित सब्जियों के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। सर्दियों में इससे घर का बना सूप, ताजे हरे बीजों से सोया दूध या इसके आगे की प्रक्रिया से आइसक्रीम, टोफू, डिप्स, आदि भी बनाया जा सकता है।

भविष्य की अपार संभावनाएं

भारत में हरी सोयाबीन की खेती ज्यादातर झारखंड, बिहार, हैदराबाद और इसके सीमावर्ती राज्यों तक ही सीमित है। सोयाबीन की खेती को गैर-पारंपरिक स्थानों जैसे उत्तर-पूर्वी भारत में बढ़ावा दिया जाना चाहिए ताकि उत्पादन में सुधार हो और इसे दाल-प्रोटीन विकल्प के रूप में लोकप्रिय बनाया जा सके। इसके अलावा, इसका फसल उत्पादन भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र के चावल उगाने वाले क्षेत्रों में भी लोकप्रिय बनाने हेतु प्रयास करना आवश्यक है। साथ-साथ हरी फलियां तोड़ने के उपरांत दूधारु जानवरों के चारे के रूप मे फसल अवशेष को प्रयोग करने की संभावनाएं भी तलाशी जा सकती हैं। इसकी फसल अवधि कम करने पर भी विचार कर शोध किए जाने चाहिए ताकि इसे देश के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग किए जाने वाले विभिन्न फसल अनुक्रमों के अनुकूल बनाया जा सके।

हरी सोयबान को और अधिक जनप्रिय बनाने के लिए भारतवासियों के खानपान एवं स्वाद का विशेष ध्यान रखते हुए उन्नतशील गुणवता वाली किस्मों के विकास कार्यक्रमों पर गौर करने की आवशयकता है। इस क्रम में नई दिल्ली स्थित भारतीय कृषि अनुसंधासन संस्थान में बासमती चावल जैसी सुगंधित हरी सोयाबीन को आगे सुधारने का काम तीव्रगति से चल रहा है। साथ-साथ विभिन्न रोग प्रतिरोधी क्षमता वाली उच्च गुणवतायुक्त, अप्रिय स्वादरहित, एवं परिवर्तित वायुमंडलीय परिस्थिति को सहन करने वाली किस्मों के विकास पर भी तेजी से काम हो रहा है। ऐसी उम्मीद की जा सकती है कि निकट भविष्य में हरी सोयाबीन हर भारतीय के भोजन में शामिल होगी और देश के नागरिकों को अच्छा स्वास्थ के साथ-साथ किसानों की आय में बढ़ोतरी प्रदान करेगी।

चित्र 1- काटने के लिए तैयार सोयाबीन फलियां। फूल आने के लगभग 35-40 दिनों के बाद, फली कटाई के लिए तैयार हो जाती है।

चित्र 2-बिक्री के लिए पैकेट में रखी हरी सोयाबीन फलियां

कुलवंत गाथा : उत्तम खेती सफल किसान, ये है आधुनिकता का प्रमाण

जे.पी.एस. डबास, निशी शर्मा, निर्मल चंद्रा, प्रतिभा जोशी, नफीस अहमद, सर्वाशीष चक्रवर्ती एवं आनंद विजय दुबे

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानांतरण केंद्र
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

नाम : कुलवंत सिंह आत्मज श्री रघुराज सिंह
उम्र : 47 वर्ष
शिक्षा : 12वीं (10+2)
पता : गांव जलालपुर करीरा, शिकारपुर,
जिला बुलंदशहर (उ.प्र.) 203395
फोन नं. : 9719313151
वाट्सप नंबर : 9719313151
पेशा : कृषि, बीज उत्पादन, कृषि उत्पादों का मूल्य संवर्धन, विपणन
संप्रति : निदेशक, ज्यूपिटर प्रोग्रेसिव फार्मर्स कंपनी; निदेशक, बीज इंडिया कंपनी
सालाना आय (ज्यूपिटर कंपनी की) : लगभग 1 करोड़ रूपए

जब प्रधानमंत्री जी ने पूछा था, कि "आपके सरसों तेल में क्या विशेषता है, इसे आम आदमी को कैसे समझाएंगे?", तो कुलवंत ने बताया - "आमतौर पर हृदयरोगों के लिए तेलों को जिम्मेदार माना जाता है, लेकिन उनके तेलों में ऐसे गुण हैं जिनसे हृदय रोग की संभावना घट जाती है।" माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी 28 सितंबर 2021 को इस बातचीत में कुलवंत की सफलता का रहस्य जानना चाहते थे, इस घटना का सीधा प्रसारण तमाम प्रचार माध्यमों में हो रहा था, जिसे दुनियाभर ने देखा। बातचीत करने वाले कुलवंत सिंह का सफर एक किसान के सतत प्रयास, सीखने की ललक और इससे मिलने वाली सफलता की गाथा है, जिससे हम सभी को प्रेरणा मिलती है।

कुलवंत सिंह का जन्म सन 1975 में उत्तर प्रदेश के गांव जलालपुर करीरा, शिकारपुर, जिला बुलंदशहर में किसान परिवार में हुआ। गांव में ही इंटर तक पढ़ाई की और बी.एस.एफ. की नौकरी में चले गए। नौ साल तक नौकरी की, फिर लौटकर सन 2003 से अपने खानदानी पेशा "किसानी" में जुट गए। उन दिनों संयुक्त परिवार के पास 50 एकड़ जमीन थी, जिसमें पूरे क्षेत्रफल में खेती नहीं हो पाती थी। मशीनीकरण नहीं था, व्यावसायिकता और नियोजन का अभाव था। पारंपरिक रूप से धान, गन्ना, गेहूं और पशुओं का चारा उगाया जाता था। कुलवंत ने इसमें बदलाव करने का फैसला किया। कुलवंत ने जिस समय कृषि में कदम रखा, उस समय खेती से कुल 2 लाख रूपए सालाना की आमदनी होती थी। उनका गांव राजधानी दिल्ली के पास था और महानगरों के निकट खेती के अपने लाभ होते हैं।

उन्होंने देखा कि फसल के बजाए बीज उत्पादन में ज्यादा मुनाफा है, तो बीज उत्पादन करने का फैसला किया। सन 2004 से गेहूं का बीज उत्पादन करना शुरू किया, जो अगले 10 वर्षों तक चलता रहा। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली के संपर्क में आए, और बीज उत्पादन में कई प्रशिक्षण लिए और देखा कि सब्जियों का बीज उत्पादन अनाज की तुलना में कठिन तो है, लेकिन इनमें मुनाफा अधिक है, सो सब्जियों का बीज उत्पादन भी करने लगे। वर्ष 2015 में पूसा संस्थान ने निकटवर्ती इलाकों में रहने वाले किसानों के साथ सहभागितापूर्ण बीज उत्पादन के लिए अनुबंध किया, तो

कुलवंत भी उन किसानों में शामिल थे। उन्होंने पूसा संस्थान के लिए गेहूं, धान, लौकी, तरोई, भिंडी, खीरा, करेला, सरसों, चना देशी, चना सफेद, मसूर, प्याज, गाजर, मूंग, अरहर आदि फसलों के उन्नत प्रजातियों का गुणवतापूर्ण बीज उत्पादन किया, और इस प्रक्रिया में स्वयं को तराशते गए, सीखते गए। इसका नतीजा तब देखने को मिला जब उन्होंने वर्ष 2017 को अपना एक निजी बीज प्रसंस्करण प्लांट लगाया।

सन 2014 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने एक ऐसी कंपनी की संकल्पना की, जो सहकारिता के सिद्धांतों पर चलती हो और किसानों की, किसानों के लिए और किसानों के द्वारा चलाई जाती हो। इसके लिए आसपास के उत्साही किसानों को जोड़कर कंपनी "बीज इंडिया कंपनी" का गठन हुआ। कुलवंत ने वर्ष 2014 में इसे सदस्य के रूप में शामिल हुए, और पांच साल बाद सन 2019 में निदेशक बन गए। इस कंपनी का एक आउटलेट पूसा संस्थान के परिसर में खुला और अभी भी चल रहा है।

कुलवंत शुरू से ही जानते थे कि अकेला चना कभी भी भाड़ नहीं फोड़ सकता। उन्होंने वर्ष 2012 में "द ज्यूपिटर ग्रूप ऑफ प्रोग्रेसिव फार्मर्स" नामक कंपनी बनाई, और इसके बैनर तले अपना कृषि का व्यवसाय शुरू किया। इसके अंतर्गत अपने इलाके के 20 किसानों को जोड़ा और उत्पादन, प्रसंस्करण और मूल्यसंवर्धन भी शुरू किया। वे पूसा संस्थान के साथ लगातार संपर्क में रहे और जहां भी मौका मिलता, अपने उत्पादों का प्रचार-प्रसार करते रहे। पूसा कृषि विज्ञान मेला में हर साल अपना स्टॉल लगाया। धीरे-धीरे महानगरों में उनका ग्राहक वर्ग तैयार होता गया। ग्राहकों की मांग के अनुसार अपने उत्पाद पोर्टफोलियो में इजाफा करते गए। उदाहरण के तौर पर ग्राहकों की मांग थी कि हरे चने की रोटी बनानी है, तो हरे चने का आटा बनाने लगे। साथ में देसी चने का बेसन, छोले के लिए सफेद चने भी उगाकर बेचने लगे।

इस सफर में साल-दर-साल नई-नई चीजें जुड़ती गईं और खेती को अपग्रेड करते गए। पूसा संस्थान ने जब 2010 में किसानों के खेत में लेजर लेवलर मशीन का प्रदर्शन करना चाहा, तो कुलवंत ने अपने खेत प्रस्तुत किए। फिर इनके खेतों में बेड प्लांटर के प्रदर्शन लगे, और इस तकनीक के इतने मुरीद हुए कि आज कुलवंत अपनी सारी खेती बेड प्लांटर के जरिए करते हैं। बेड प्लांटर (उठी हुई क्यारियों पर बुआई) की तकनीकी के बारे में कुलवंत बताते हैं कि केवल इसी को अपनाने से बीज की आवश्यकता 10% घट गई, सिंचाई में 25% की बचत और उपज में 10% की बढ़ोतरी हुई। फिर इन्होंने बायोगैस प्लांट, स्प्रिंकलर, ड्रिप, नेटहाउस, सोलर ट्यूबवैल आदि उन्नत तकनीकों को अपनाया। अनेक उन्नत यंत्र, जैसे सुपरसीडर, मल्टीक्रॉप थ्रैशर, मल्टीक्रॉप रिज बेड प्लांटर खरीदे और खेती में नए-नए आयाम जोड़ते चले गए। जब पूसा संस्थान ने सरसों की न्यूनतम ईरूसिक अम्ल वाली किस्में पी.एम. 30 और पी.एम. 31 निकालीं, जिन्होंने जीरो और डबल जीरो किस्म कहा जाता है, तो उन्हें अपने खेतों में लगाया। वैज्ञानिकों से सीखा कि इन गुणों के कारण ये किस्में कनोला मानकों को पूरा करती हैं, जो सेहत के लिए अच्छी मानी जाती हैं, और कुलवंत ने जीरो और डबल जीरो का तेल निकालकर बेचना शुरू कर दिया।

आज इनकी कंपनी ज्यूपिटर ग्रूप, जिसमें 20 किसान सदस्य हैं, का टर्नओवर लगभग 1 करोड़ सालाना का है। आप अपने खेतों में स्थायी रूप से 20 महिला-पुरुष मजदूरों, और फसल सीजन में 50 मजदूरों को रोजगार देते हैं। पूसा संस्थान के साथ अपने संपर्कों का लाभ उठाते हुए अपने आस-पास के अनेक गांवों में नियमित रूप से किसान गोष्ठियां, सम्मेलन आदि करवाते हैं। मेरा गांव मेरा गौरव कार्यक्रम के अंतर्गत इनके जिले के कई गांवों को गोद लिया गया है। कृषि विज्ञान मेले में इनके गांव से किसानों से भरी बसें आती हैं। इनके खेतों में प्रशिक्षणार्थियों, आगंतुकों, मीडिया टीमों का तांता लगा रहता है, यहां तक कि विदेशी मेहमानों का भी भ्रमण हुआ है इससे इनकी लोकप्रियता बढ़ी है और काफी मीडिया कवरेज मिलता है। दूरदर्शन और आकाशवाणी में भाषण देने के लिए इन्हें बुलाया जाता है। इन्हें भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के नवोन्मेषी किसान सहित अनेक संस्थानों के 20 से अधिक पुरस्कार मिल चुके हैं।

कुलवंत एक मॉडल किसान के रूप में सामने आते हैं, जिन्होंने अपनी कृषि को बदलने के लिए शनैः-शनैः संसाधन जुटाए, वैज्ञानकों और संस्थानों से संपर्क बनाए रखा, वैज्ञानिक शोधों पर विश्वास कायम रखा, उन्नत तकनीकों को सीखने और अपनाने में रुचि दिखाई, एक समूह के रूप में आगे बढ़े और आज एक उदाहरण बनकर हमारे सामने खड़े हैं।

बेड विधि से मसूर की बुआई

बेड विधि से प्याज का बीज उत्पादन

अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच-सींच कर महाप्राण शक्तियां बनाते हैं।

- महर्षि अरविंद

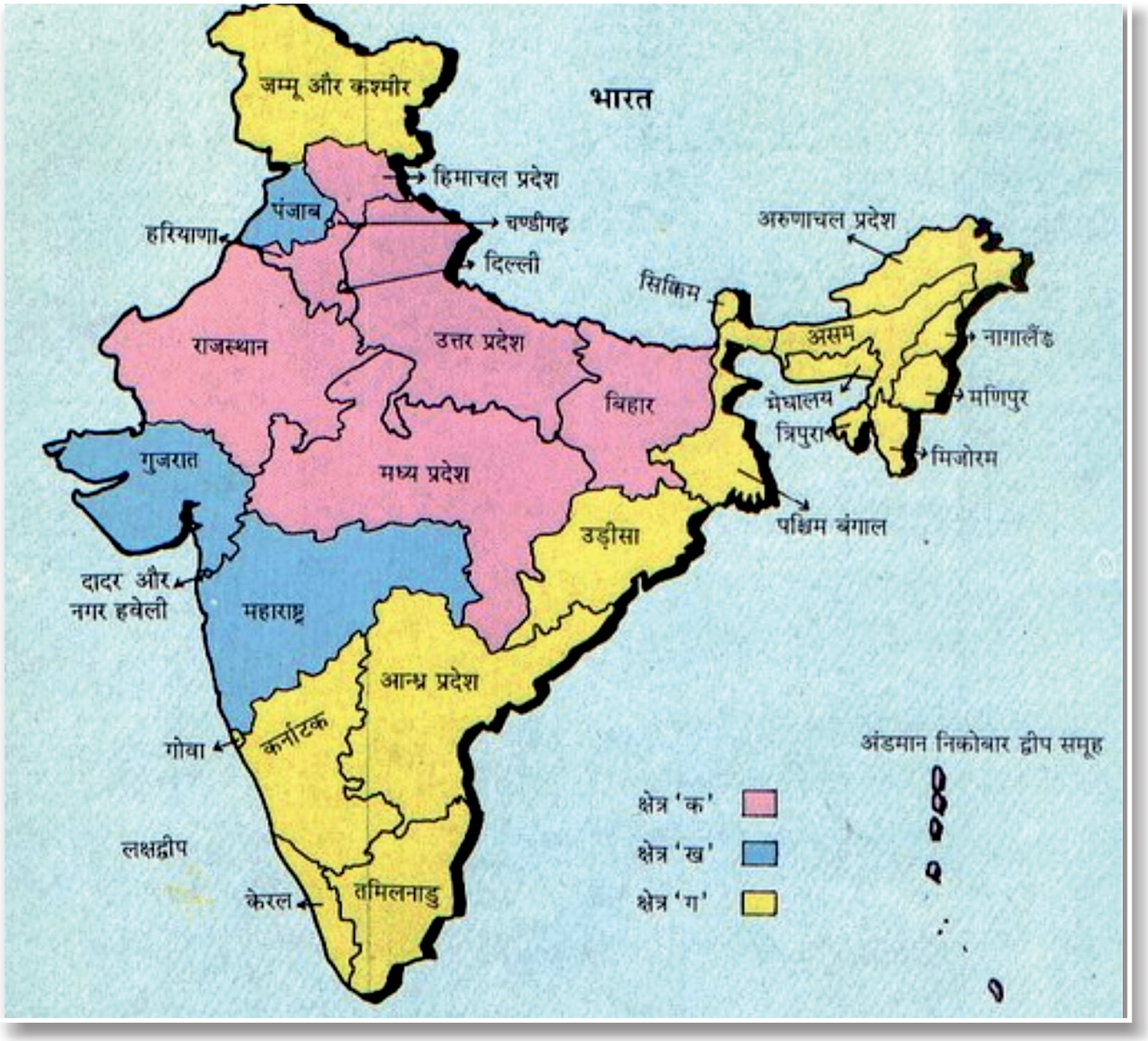
भारत
जम्मू और कश्मीर
हिमाचल प्रदेश
पंजाब
चण्डीगढ़
हरियाणा
दिल्ली
सिक्किम
अरुणाचल प्रदेश
राजस्थान
उत्तर प्रदेश
असम
नागालैंड
बिहार
मेघालय
मणिपुर
त्रिपुरा
गुजरात
मध्य प्रदेश
मिजोरम
पश्चिम बंगाल
उड़ीसा
दादर और
नगर हवेली
महाराष्ट्र
आन्ध्र प्रदेश
गोवा
कर्नाटक
अंडमान निकोबार द्वीप समूह
क्षेत्र 'क'
क्षेत्र 'ख'
क्षेत्र 'ग'
लक्षद्वीप
केरल
तमिलनाडु

राजभाषा खंड...

संस्थान में राजभाषा संबंधी गतिविधियां

राजभाषा

भारत के संविधान में अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार देवनागरी लिपि में लिखित 'हिंदी' को संघ की राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया है। राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रतिवर्ष जारी किए जाने वाले वार्षिक कार्यक्रम में संघ के अधिकारिक कार्यों को हिंदी भाषा में करने के लिए लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं। प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं प्रशिक्षण को राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए मार्गदर्शी सिद्धांत के रूप में अपनाया गया है।

संस्थान में राजभाषा हिंदी का उत्तरोत्तर प्रयोग

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा समय-समय पर जारी दिशा-निर्देशों के अनुसार, भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली, संघ की राजभाषा नीति को लागू करने और इस संबंध में जारी विभिन्न आदेशों के अनुपालन को सुनिश्चित करने हेतु निरंतर प्रयासरत है। संस्थान में हिंदी के उत्तरोत्तर प्रयोग संबंधी कार्यों की निगरानी हेतु हिंदी अनुभाग स्थापित किया गया है, जो निदेशक एवं अध्यक्ष संस्थान रा.भा.कार्यान्वयन समिति के मार्गदर्शन और नियंत्रण में कार्य करता है। संस्थान में राजभाषा विभाग, गृहमंत्रालय द्वारा राजभाषा के कार्यान्वयन हेतु जारी 'वार्षिक कार्यक्रम' में निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए निरंतर प्रयास रत हैं।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें

संस्थान के निदेशक एवं अध्यक्ष, संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की अध्यक्षता में प्रत्येक तिमाही में एक बैठक आयोजित की जाती है जिसमें में संस्थान के समस्त संभाग/इकाई/परियोजना/केंद्र/अनुभाग एवं उसके अधीनस्थ सभी क्षेत्रीय केंद्रों से प्राप्त तिमाही रिपोर्ट की समीक्षा के साथ राजभाषा संबंधी कार्यों की समीक्षा की जाती है। साथ ही समिति संस्थान में राजभाषा के प्रभावी कार्यान्वयन हेतु उचित सुझाव देती है। वर्ष 2020 से कोविड-19 संक्रमण के चलते यह बैठक ऑनलाइन जूम ऐप के माध्यम से निरंतर आयोजित की जा रही हैं।

हिंदी चेतना मास

संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन के प्रति नवीन चेतना और जागृति उत्पन्न करने तथा अधिकारियों/कर्मचारियों को हिंदी में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से संस्थान मुख्यालय में प्रतिवर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में मनाया जाता है।

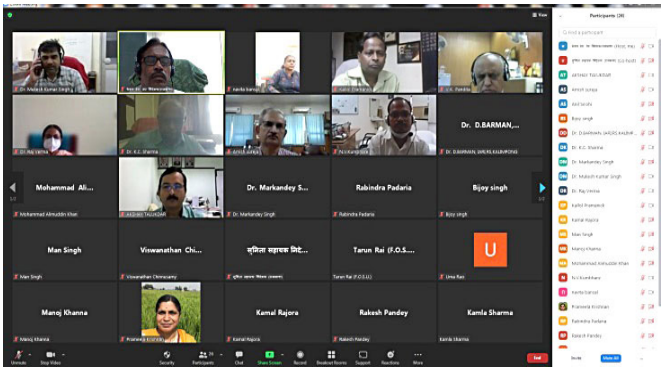

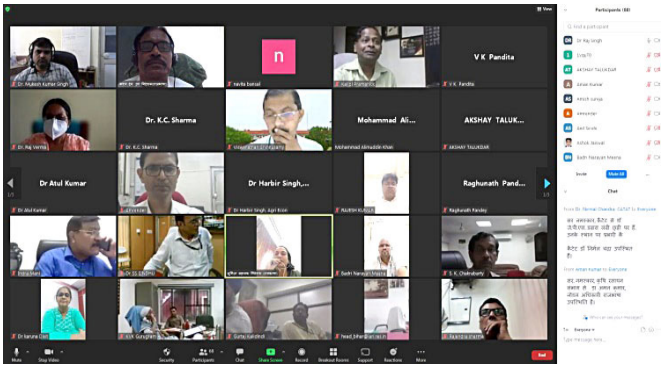

दिनांक 30 जून, 2021 को आयोजित संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक ऑनलाइन जूम ऐप के माध्यम से।

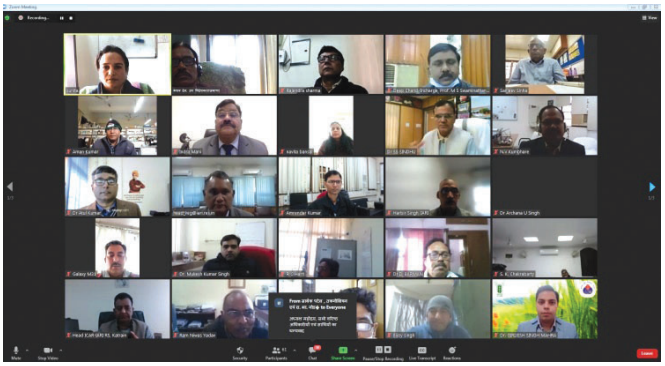

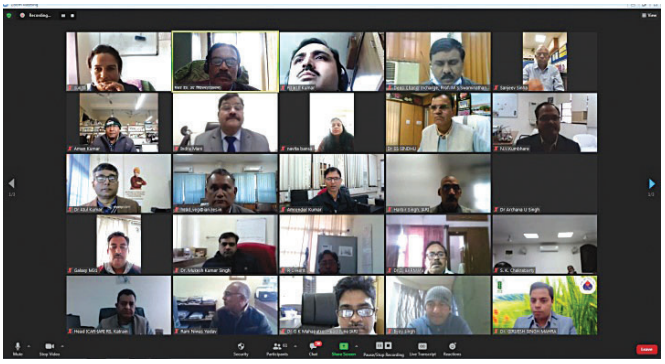

दिनांक 30 सितंबर, 2021 को आयोजित संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक ऑनलाइन जूम ऐप के माध्यम से।

इस वर्ष दिनांक 14 सितंबर से 13 अक्तूबर, 2021 तक हिंदी चेतना मास का सफलतापूर्वक आयोजन ऑफलाइन/ऑनलाइन ढ़ंग से किया गया। इसके अंतर्गत विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जैसे- काव्य पाठ, आशुभाषण, वाद-विवाद, टिप्पण एवं मसौदा लेखन, प्रश्नोत्तरी, हिंदी टंकण एवं सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता (वर्णनात्मक) कुशल सहायी कर्मचारी वर्ग के लिए आयोजित की गई। इस वर्ष वाद-विवाद प्रतियोगिता का विषय था- 'शिक्षा, रोजगार का साधन मात्र है–पक्ष/विपक्ष''। साथ ही कुशल सहायी/दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों के लिए विशेष रूप से एक सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें विविधरंगी प्रश्न पूछे गए। उक्त सभी प्रतियोगिताओं में संस्थान मुख्यालय स्थित निदेशक कार्यालय एवं विभिन्न संभागों/इकाइयों के सभी वर्गों के अधिकारियों/कर्मचारियों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया।

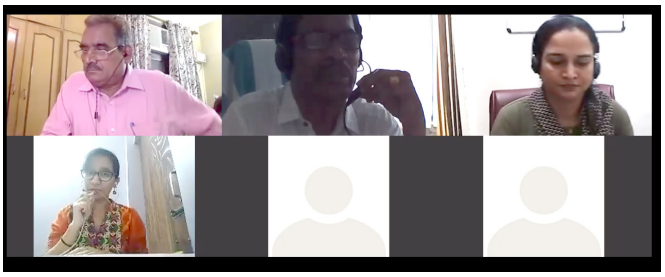

संस्थान मुख्यालय के साथ-साथ संस्थान के दिल्ली स्थित अनेक संभागों/क्षेत्रीय केंद्रों में हिंदी में जागरूकता का सृजन करने और हिंदीमय परिवेश बनाने के उद्देश्य से अपने स्तर पर अनेक प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

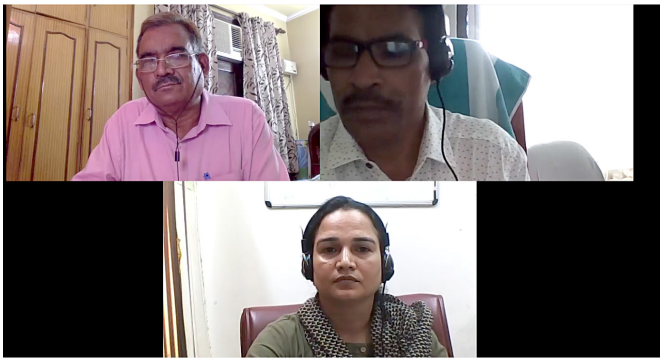

राजभाषा उन्नयन पुरस्कार योजनाएं/प्रतियोगिताएं

राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने हेतु राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, पुरस्कार योजना विभाग के दिशा-निर्देशों के अनुसरण में इस

संस्थान में प्रतिवर्ष निम्नलिखित प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है।

- मूलरूप से सरकारी कामकाज हिंदी में करने के लिए नकद पुरस्कार योजना
- हिंदी में श्रुतलेख (डिक्टेशन) देने के लिए नकद पुरस्कार योजना
- संभागीय/अनुभागीय/क्षेत्रीय केंद्र स्तर पर हिंदी व्यवहार प्रतियोगिता हेतु चल-शील्ड
- सर्वश्रेष्ठ राजभाषा नोडल अधिकारी पुरस्कार योजना

कृषि प्रसार संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

दिनांक 28.08.2021 को संभाग में आयोजित राजभाषा कार्यान्वयन उपसमिति की बैठक में लिए गए निर्णयानुसार संभाग स्तर पर दिनांक 13.09.2021 को हिंदी से संबंधित विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। प्रतियोगिताओं को सफल बनाने के लिए संभाग के सभी अधिकारियों, कर्मचारियों, विद्यार्थियों व अनुसंधानकर्ताओं ने पूर्ण सहयोग किया व विभिन्न प्रतियोगिताओं में सहभागिता की। कार्यक्रम की अध्यक्षता संभाग के अध्यक्ष महोदय डॉ. रवीन्द्र पडारिया द्वारा की गई। प्रतियोगिताओं को पारदर्शक व सफल बनाने के लिए निम्नलिखित निर्णायक मंडल का गठन किया गया।

1. डॉ. अर्चना सिंह, प्रधान वैज्ञानिक, जैव रसायन संभाग।
2. डॉ. अतुल कुमार, प्रधान वैज्ञानिक, बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संभाग।
3. डॉ. गिरिजेश सिंह महरा, राजभाषा नोडल अधिकारी कार्यक्रम के संचालक थे।

समापन कार्यक्रम

कार्यक्रम का समापन समारोह अपराहन 4.00 बजे किया गया जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. बी. एस. तोमर, संयुक्त निदेशक (प्रसार) सम्मिलित हुए तथा संबोधन के साथ-साथ मुख्य अतिथि द्वारा विजेताओं को पुरस्कार (स्मृति चिन्ह एवं प्रमाणपत्र) भी प्रदान किए गए।

कार्यक्रम में उपस्थित अध्यक्ष, निर्णायक मंडल एवं प्रतिभागीगण

कार्यक्रम के अध्यक्ष मुख्य अतिथि को स्मृति चिन्ह भेंट करते हुए

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि, विजेताओं को स्मृति चिन्ह एवं प्रमाणपत्र भेंट करते हुए

मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

हिंदी पखवाड़ा

मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग द्वारा संभागीय स्तर पर 27 सितंबर से 11 अक्तूबर 2021 तक हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया गया। इसके अंतर्गत

विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को संभाग द्वारा आयोजित कार्यक्रम में प्रशस्ति पत्र और पुरस्कार प्रदान किए गए।

छात्रों के लिए ऑनलाइन माध्यम से "क्या जैविक खेती भारत के लिए चिर स्थायी विकल्प है?" विषय पर वाद विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इसके साथ ही ऑनलाइन माध्यम के द्वारा स्टाफ़ के सभी सदस्यों के लिए विभिन्न प्रतियोगिताएं जैसे कि आशु-भाषण प्रतियोगिता तथा प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता भी आयोजित की गईं जिसमें सभी सदस्यों ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। इस कार्यक्रम को सुचारू रूप से आयोजित व संचालित करने के लिए संभागाध्यक्ष एवं अध्यक्ष संभाग राजभाषा उपसमिति डॉ. आर.एन. पांडेय के मार्गदर्शन में डॉ. एम.ए.खान नोडल अधिकारी संभाग राजभाषा उपसमिति, डॉ. इंदु चोपड़ा (सचिव, आयोजन समिति) एवं श्री कृष्ण लाल यादव, सदस्य, आयोजन समिति द्वारा सहयोग किया गया।

पर्यावरण विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

हिंदी चेतना मास

पर्यावरण विज्ञान संभाग द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में मनाए जा रहे हिंदी चेतना मास (14 सितंबर से 13 अक्तूबर, 2021) के सितंबर, 2021 को राजभाषा में पर्यावरण से संबंधित एक ज्वलंत विषय ''अपशिष्टों का प्रबंध व मूल्य संवर्धन'' पर एक वक्तव्य का आयोजन किया गया। इस अवसर पर विश्व विख्यात वैज्ञानिक डॉ. के.के. पंत, डीन फेकल्टी एवं प्रोफेसर, केमिकल्स इंजीनियरिंग संभाग, आई.आई.टी, दिल्ली, ने ''प्लास्टिक, इलेक्ट्रानिक और कृषि अपशिष्टों के रणनीतिक प्रबंधन के माध्यम से मूल्य संवर्धन'' पर एक व्याख्यान प्रस्तुत किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. रश्मि अग्रवाल, संयुक्त निदेशक (शिक्षा) द्वारा की गई।

समारोह के आरंभ में पर्यावरण विज्ञान संभाग के अध्यक्ष डॉ. भूपेन्द्र सिंह ने ऑनलाइन उपस्थित 62 प्रतिभागियों का अभिवादन करते हुए, पूसा संस्थान में पर्यावरण शोध व उपलब्धियों के इतिहास तथा इस दिशा में की गई गतिविधियों पर प्रकाश डाला। श्री केशव देव, उपनिदेशक (राजभाषा) ने इस अवसर पर अपने विचार प्रकट करते हुए भा.कृ.अनु.संस्थान में हिंदी भाषा के कृषि विज्ञान व शोध में प्रचार व प्रसार के क्षेत्र में संस्थान की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। आमंत्रित वक्ता डॉ. के.के. पंत की उपलब्धियों का ब्यौरा डॉ. आरती भाटिया, प्रधान वैज्ञानिक सेस्करा ने दिया जिसके बाद डॉ. के.के. पंत ने ''प्लास्टिक, इलेक्ट्रानिक और कृषि अपशिष्टों के रणनीतिक प्रबंधन के माध्यम से मूल्य संवर्धन'' पर पड़ने वाले प्रभावों का विवरण बहुत ही सरल, सारगर्भित एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत किया। व्याख्यान के निष्कर्षों का हमारे आज के शोध व जरूरत के साथ तुलनात्मक अध्ययन व आकलन करते हुए संस्थान की संयुक्त निदेशक, शिक्षा, डॉ. रश्मि अग्रवाल ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में इन

अपशिष्टों से फसलों पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों का सटीक एवं वैज्ञानिक आकलन करने की जरूरत पर बल दिया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. दिनेश कुमार शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक, पर्यावरण विज्ञान संभाग तथा धन्यवाद ज्ञापन डॉ. एस. नरेश कुमार, प्राध्यापक पर्यावरण विज्ञान संभाग द्वारा प्रेषित किया गया।

कृषि रसायन विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

कृषि रसायन संभाग में दिनांक 25 सितंबर, 2021 को हिंदी दिवस का आयोजन किया गया। जिसके अंतर्गत हिंदी में एक व्याख्यान और विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। हिंदी व्याख्यान डॉ. नीरज पतंजलि, वैज्ञानिक, कृषि रसायन संभाग द्वारा प्रस्तुत किया गया। जिसका शीर्षक था "कीटनाशकों का प्रयोग- भंडारण, निपटारण, जानकारी एवं सावधानियां" इस व्याख्यान के अंतर्गत डॉ. पतंजलि ने कीटनाशकों के प्रयोग और सावधानियों के बारे में विस्तार से बताया। जिसमें संभाग के सभी वैज्ञानिकों और कुशल तकनीकी अधिकारियों ने ज़ूम ऐप के माध्यम से भाग लिया। इसके अतिरिक्त संभाग में आशुभाषण, श्रुतलेख, हिंदी अनुवाद और सहायी कर्मचारियों के लिए सुलेख प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। संभाग के सभी अधिकारियों और कर्मचारियों ने सभी प्रतियोगिताओं में बड़े उत्साह से भाग लेकर कार्यक्रम को सफल बनाया।

जैव रसायन विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य में जैव रसायन संभाग में हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी दिनांक 24-08-2021 को एक परिचर्चा/प्रतियोगिता, शीर्षक **"वैश्विक स्तर पर स्वतंत्र भारत: आज़ादी के 75 वर्ष का अवलोकन एवं आगामी 25 वर्ष का प्रक्षेपण"** का आयोजन ज़ूम मोड द्वारा किया गया। इस परिचर्चा को आकर्षक बनाने के

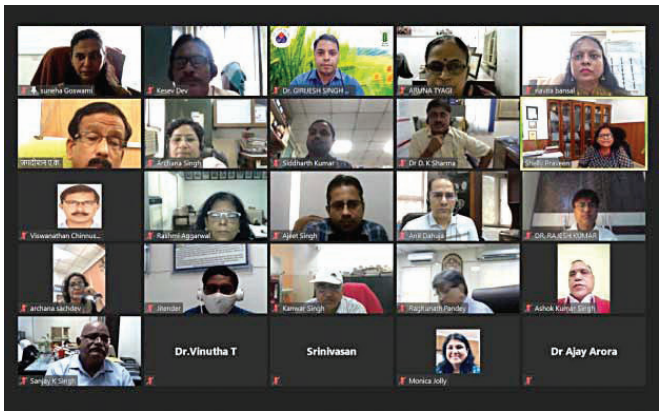

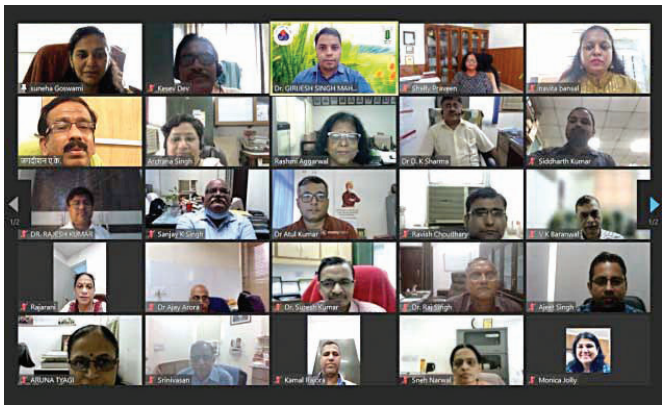

जैव रसायन संभाग में दिनांक 24/08/2021 को आयोजित परिचर्चा

लिए पूरे संस्थान से प्रतिभागी आमंत्रित किए गए एवं भा.कृ.अनु.स. की वेबसाइट के द्वारा भी इसका प्रचार किया गया।

परिचर्चा में संस्थान के निदेशक माननीय डॉ. ए.के. सिंह, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित थे। इसी के साथ निर्णायक मंडल के सदस्य के रूप में डॉ. दिनेश कुमार शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक, पर्यावरण विज्ञान संभाग, डॉ. अरुणा त्यागी, प्रधान वैज्ञानिक, जैव रसायन विज्ञान विभाग, डॉ. अतुल कुमार, प्रधान वैज्ञानिक, बीज विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग एवं श्री केशव देव, उप निदेशक (राजभाषा) को भी आमंत्रित किया गया। संस्थान के विभिन्न संभागों से प्रतिभागियों के नामांकन प्राप्त हुए। संभाग की अध्यक्ष आदरणीय डॉ शैली प्रवीण ने स्वागत भाषण में अपने विचार साझा किए एवं सभा में उपस्थित सभी अतिथियों एवं श्रोताओं का स्वागत किया। अध्यक्ष महोदया ने स्वतंत्रता दिवस की शुभकामनाएं देते हुए तकनीकी के उभरते आयामों की चर्चा की। संस्थान के निदेशक माननीय डॉ ए.के. सिंह ने सभा को संबोधित किया एवं सभी का प्रोत्साहन बढ़ाया। श्री जगदीशन ए.के., उप निदेशक (राजभाषा) भा.कृ.अनु.प., नई दिल्ली ने प्रबुद्ध वक्ता के रूप में अपने विचार सभा के साथ साझा किए तथा परिचर्चा के विषय पर प्रकाश डालते हुए आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक विकास, विदेश नीति एवं आगामी 25 वर्ष जैसे बिंदुओं पर विस्तृत चर्चा की। प्रतियोगिता में प्रतिभागियों ने अपने विचार साझा किए तदोपरांत प्रख्यात वक़्ताओं के रूप में डॉ. दिनेश कुमार शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक, पर्यावरण विज्ञान और संभाग; डॉ. अतुल कुमार, प्रधान वैज्ञानिक, बीज विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग एवं डॉ. अरुणा त्यागी, प्रधान वैज्ञानिक, जैव रसायन संभाग ने परिचर्चा में अपने विचार प्रकट किए। कार्यक्रम के अंत में अध्यक्ष महोदया डॉ. शैली प्रवीण ने सभी को धन्यवाद देते हुए कार्यक्रम के समापन की घोषणा की। अंततः श्रीमती नविता बंसल, हिंदी नोडल अधिकारी, जैव रसायन संभाग ने औपचारिक धन्यवाद प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

कीट विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

हिंदी चेतना मास

हिंदी चेतना मास के दौरान कीट विज्ञान संभाग, भा.कृ.अनु.प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने जूम प्लेटफॉर्म के माध्यम से 12 अक्तूबर 2021 को संभाग स्तर पर हिंदी प्रतियोगिता का आयोजन संभागाध्यक्ष, डॉ. देबजानी डे की अध्यक्षता में किया। अध्यक्षा ने उद्घाटन भाषण में संभाग में हिंदी में होने वाले क्रिया-कलापों में संतोष व्यक्त किया और इस वर्ष हिंदी व्यवहार प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार पाने पर अपार हर्ष व्यक्त किया। डॉ. संजीव रंजन सिन्हा, नोडल अधिकारी (राजभाषा) ने अपने वक्तव्य में हिंदी के महत्व और उसे सर्वसम्मति से संभाग में अपनाए जाने पर बल दिया। इस कार्यशाला में 20 से अधिक संभाग के कर्मचारियों और शिक्षाणार्थियों ने भाग लिया।

आयोजन सचिव, डॉ अर्चना अनोखे ने इस प्रतियोगिता को पांच भागों में बांटा जिसमें प्रथम भाग में सभी उपस्थित व्यक्तियों से संभाग से जुड़े प्रश्न पूछे गए, दूसरे भाग में लोकोक्तियां और मुहावरों में अंतर समझाने को कहा गया, तीसरे भाग में दोहे सुनाने और उनके अर्थ बतलाने, चौथे भाग में कवितायें या गीत सुनाने तथा पांचवें भाग में गूगल फार्म में एक बनाई गई प्रश्नोत्तरी का उत्तर देने को कहा गया। इस प्रतियोगिता में सभी वर्गों के कर्मचारियों ने रुचि दिखाई और बढ़-चढ़ कर सहभागिता की। इसमें गैर हिंदी भाषी क्षेत्र के लोगों ने विशेष रुचि दिखाई। अंत में इस सभा का समापन, धन्यवाद प्रस्ताव देकर किया गया।

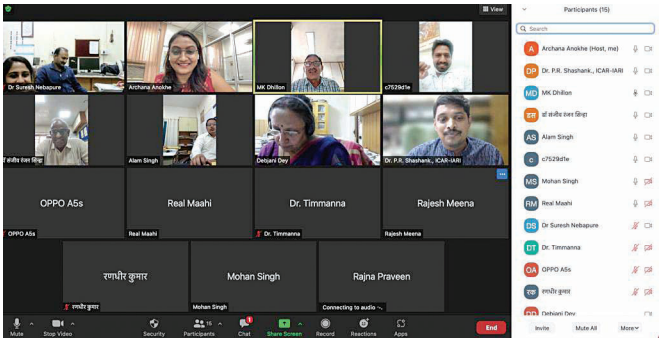

कीट विज्ञान संभाग में 12/10/21 को हिंदी प्रतियोगता का आयोजन

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केंद्र, इंदौर

हिंदी पखवाड़ा

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, इंदौर में विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी "हिंदी पखवाड़ा" (14 सितंबर से 28 सिंतबर, 2021) तक मनाया गया। हिंदी पखवाड़े के दौरान हिंदी से संबंधित विभिन्न प्रतियोगिताएं जैसे काव्य पाठ, तात्कालिक लघु भाषण, श्रुत लेख एवं हास्य व्यंग्य का आयोजन किया गया। डॉ. जे.बी. सिंह ने काव्य पाठ का, डॉ. डी.के. वर्मा ने तात्कालिक लघु भाषण का, डॉ. ए.के. सिंह ने श्रुत लेख का एवं डॉ. उपेन्द्र सिंह द्वारा हास्य व्यंग्य प्रतियोगिता का संचालन किया गया।

हिंदी कार्यशाला एवं पुरस्कार वितरण समारोह

हिंदी कार्यशाला का आयोजन तथा हिंदी पखवाड़े के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार वितरण का कार्यक्रम दिनांक 29.09.2021 को दोपहर बाद 03:30 बजे किया गया। कार्यक्रम की शुरुआत में मुख्य एवं अन्य अतिथियों द्वारा मां सरस्वती का माल्यार्पण किया गया। स्वागत भाषण तथा मुख्य अतिथि व वक्ता का परिचय डॉ. डी.के. वर्मा ने दिया। मुख्य वक्ता, डॉ. किशोर पंवार, पूर्व अध्यक्ष, बीज तकनीकी विभाग, होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इंदौर द्वारा "कबीर की भाषा और उनकी साखियों में ज्ञान-विज्ञान" नामक विषय पर अपना व्याख्यान दिया। अपने व्याख्यान में डॉ. पंवार द्वारा कबीर के रचित दोहों में छुपे ज्ञान-विज्ञान पर तथा उनके द्वारा वनस्पति व अन्य जीव-जन्तुओं के इस्तेमाल का सही अर्थ समझाया जो कि अत्यंत सराहनीय था। इसके बाद मुख्य अतिथि द्वारा हिंदी पखवाड़े के विजेताओं को पुरस्कार वितरण किया गया। काव्य पाठ में प्रथम पुरस्कार श्री सुशील मावले, द्वितीय पुरस्कार श्री नरेन्द्र बिरला एवं तृतीय पुरस्कार श्रीमती जेस्मी विजयन को प्रदान किया गया। तात्कालिक लघु भाषण में डॉ. राहुल एम. फूके को प्रथम, डॉ. जे.बी. सिंह को द्वितीय एवं डॉ. प्रकाश टी.एल. को तृतीय पुरस्कार प्रदान किया गया। श्रुत लेख में प्रथम पुरस्कार डॉ. जे.बी. सिंह, द्वितीय पुरस्कार संयुक्त रूप से कु.ज्योति बांगरे, श्री विनोद कुमार शिवहरे एवं श्री बसंत कुमार राऊत तथा तृतीय पुरस्कार संयुक्त रूप से श्री रविन्द्र कुमार गोयल, श्री मुकेश परमार, डॉ. उपेन्द्र सिंह एवं श्री विनोद कुमार शिवहरे को दिया गया। हास्य व्यंग्य प्रतियोगिता में डॉ. प्रकाश मालवीय प्रथम, डॉ. प्रकाश टी.एल. द्वितीय एवं श्री विनोद कुमार शिवहरे को तृतीय पुरस्कार दिया गया। सहभागिता पुरस्कार प्राप्त करने वाले प्रतियोगी डॉ. बद्री सिंह, श्री कुलदीप सिंह सोलंकी, श्री प्रकाश तेलंग, श्री लालचंद पारगी, श्री मयंक जैन, श्री राकेश कुमार मई, श्री पवन बड़ोदे, श्री दीपक बकावले, श्री श्याम पाटीदार, श्रीमती निशा अजबैले एवं श्री विवके रघुवंशी रहे। निर्णायक की भूमिका निभाने वाले डॉ. ए.के. सिंह तथा डॉ. डी.के. वर्मा को भी पुरस्कृत किया गया।

अंत में अध्यक्षीय उद्धबोधन डॉ. के.सी. शर्मा द्वारा दिया गया एवं डॉ. राहुल एम. फूके द्वारा धन्यवाद ज्ञापन के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केंद्र, पुणे

हिंदी दिवस

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, पुणे में दिनांक 14 सितंबर, 2021 को हिंदी दिवस कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का आयोजन कोविड-19 के प्रोटोकॉल हेतु ऑफलाइन माध्यम से किया गया। जिसकी अध्यक्षता क्षेत्रीय केंद्र के अध्यक्ष डॉ. जी के महापत्रों ने की तथा 'जैविक खेती के महत्व' विषय पर कार्यशाला की गई। इस कार्यशाला में सात अधिकारियों तथा बारह कर्मचारियों ने भाग लिया।

इस अवसर पर कर्मचारियों के लिए हिंदी में निम्नलिखित प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया:

अ) पूरे वर्ष (2020-21) हिंदी में किया गया कार्य

ब) 'जैविक खेती के महत्व' विषय पर वक्तव्य

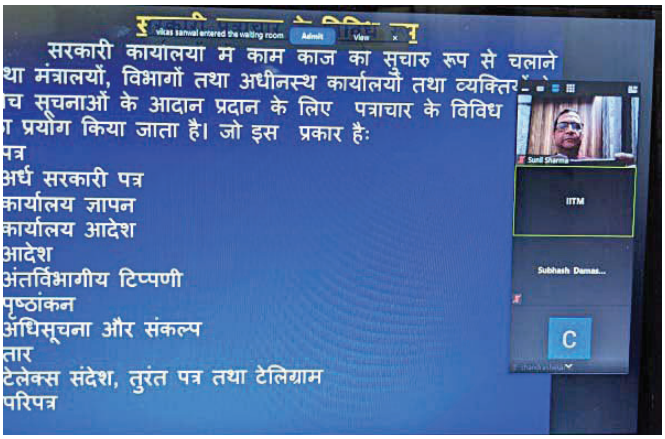

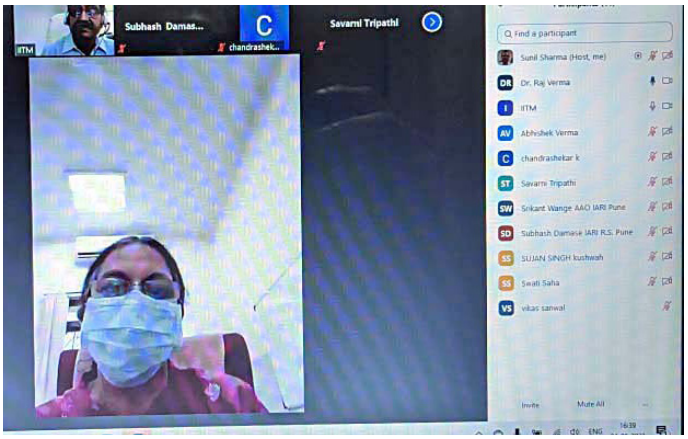

क्षेत्रीय केंद्र पुणे द्वारा हिंदी कार्यशाला का 14/09/2021 आनलाइन आयोजन

संस्थान के सभी वर्गों के कर्मचारियों ने प्रतियोगिताओं में उत्साह के साथ भाग लिया। कार्यक्रम का समापन सभी को धन्यवाद प्रस्ताव से हुआ।

क्षेत्रीय केंद्र,पुणे में हिंदी दिवस का आयोजन (14/09/2021)

कार्यशाला

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, पुणे में दिनांक 04 जून, 2021 को एक हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया था। इस अवसर पर डॉ. ओ.एन. शुक्ला, उप-प्रबंधक राजभाषा, भारतीय उष्णदेशीय मौसम विज्ञान संस्थान, पुणे ने "पत्राचार के विविध रूप" नामक विषय पर व्याख्यान दिया। कार्यशाला में 6 अधिकारियों और 4 कर्मचारियों ने भाग लिया। कार्यशाला के दौरान पत्राचार के विविध रूप पर विस्तार से चर्चा हुई। हिंदी में पत्राचार को कर्मचारियों के लिए सुगम बनाने का प्रयास किया गया। अधिकारियों और कर्मचारियों ने इस में उत्साह से भाग लिया।

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केंद्र, (खाद्यान एवं उद्यान), अमरतारा काटेज, शिमला

हिंदी कार्यशाला

नराकास, शिमला द्वारा तय दिनांक 30.06.2021 को अवधि (1.04.2021 से 30.06.2021) तक समाप्त तिमाही की हिंदी कार्यशाला का आयोजन इस केंद्र के अमरतारा स्थित कार्यालय पर किया गया। इस कार्यशाला के मुख्य अतिथि इस केंद्र के अध्यक्ष डॉ. कल्लोल कुमार प्रामाणिक ने इसकी शुरुआत की। कार्यशाला में लगभग 10 अधिकारियों/ कर्मचारियों ने हिस्सा लिया तथा राजभाषा में काम करने के अपने-2 अनुभव बांटे तथा हिंदी में काम काज के सरल तरीके बताए गए। इस कार्यशाला का समापन डॉ. अरूण कुमार शुक्ला इस केंद्र के नोड़ल अधिकारी एवं प्रधान वैज्ञानिक के धन्यवाद ज्ञापन के बाद संपन्न हुई।

क्षेत्रीय केंद्र अमरतारा काटेज, शिमला में कार्यशाल का आयोजन

हिंदी पखवाड़ा एवं अन्य राजभाषा गतिविधियां

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, शिमला के टुटीकंड़ी फार्म पर दिनांक 14.09.2021 को एक हिंदी कार्याशाला का आयोजन भी हिंदी पखवाडे के शुभारम्भ के साथ तिमाही (01.07.2021 से 30.09.2021) के लिए किया गया। कार्यशाला के मुख्य अतिथि इस केंद्र के अध्यक्ष डॉ. कल्लोल कुमार प्रामाणिक ने इसकी शुरुआत की। इस मौके पर केनरा बैंक के अधिकारीगण भी मौजूद थे। इस कार्यशाला में कुल मिलाकर 30 वैज्ञानिकों/अधिकारियों एवं कर्मचारियों

ने भाग लिया। कार्यशाला में हिंदी में कैसे सरल तरीके से काम-काज किया जा सकता है इसके बारे में अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया गया। कुल मिलाकर कार्यशाला बहुत सफल रही।

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केंद्र, कलिम्पोंग

हिंदी दिवस

आज आधुनिक कहलाने के चक्कर में लोग अपनी ही भाषा को ही हीन समझने लगे हैं। आवश्यकता है तो

विजेता, सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता 2021 पुरस्कृत करते हुए अध्यक्ष क्षेत्रीय केंद्र

अध्यक्ष के साथ ग्रप फोटो (समापन समारोह)

अपनी भाषा के गौरव को पुन: स्थापित करने की। भले ही हिंदी औपचारिक रूप से राजभाषा घोषित है पर धरातल पर अभी भी पिछड़ी हुई है। अत: अपनी राजभाषा के प्रचार-प्रसार के लिए सरकार तथा सभी देशवासियों को समग्र रूप में प्रयास करना नितांत आवश्यक है। इसी संदर्भ में भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, कलिम्पोंग में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करने संबंधी प्रतिवर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में संस्थान में "हिंदी चेतना सप्ताह" आयोजित करता आ रहा है और इस वर्ष भी बड़े उत्साह के साथ हिंदी चेतना सप्ताह का आयोजन किया गया है। वर्तमान में जहां कोविड-19 महामारी से पूरा विश्व गुजर रहा है इसी को ध्यान रखते हुए एवं स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार के दिशा-निर्देशों का पालन करते हुए कार्यक्रम का

उद्घाटन समारोह और समापन समारोह को छोड़ अन्य सभी कार्यक्रम ऑनलाइन मोड़ में सफलतापूर्वक आयोजित किए गए।

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केंद्र, करनाल

हिंदी पखवाड़ा

भा.कृ.अनु.प.-भा.कृ.अनु. संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, करनाल में हिंदी पखवाड़ा दिनांक 14 सितंबर, से 28 सितंबर, 2021 तक मनाया गया। पखवाड़े का समापन समारोह दिनांक 28 सितंबर, 2021 को किया गया। इसके अंतर्गत प्रतियोगिताओं का आयोजन कराया गया। जिसमें वैज्ञानिक एवं तकनीकी अधिकारी वर्ग के लिए शब्द ज्ञान (हिंदी एवं अंग्रेजी), तकनीकी कर्मचारी व प्रशासनिक वर्ग के लिए निबंध लेखन एवं कुशल सहायी व दैनिक वेतन सहायी कर्मचारियों के लिए श्रुतलेखन प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। इन प्रतियोगिताओं में संस्थान के सभी वर्गों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। सभी वर्गों में प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किए गए। शब्द ज्ञान प्रतियोगिता

क्षेत्रीय केंद्र, करनाल में हिंदी पखवाड़ा का आयोजन

के वैज्ञानिक वर्ग में डॉ. सुरेश चंद राणा प्रधान वैज्ञानिक ने प्रथम, डॉ. राम निवास यादव, प्रधान वैज्ञानिक ने द्वितीय एवं डॉ. धीरेन्द्र चौधरी, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। निबंध लेखन प्रतियोगिता के तकनीकी वर्ग में श्रीमती सुमन मीना ने प्रथम, श्री चन्द्रभानु, तकनीकी सहायक ने द्वितीय एवं श्रीमती सुशमा, वरिष्ठ तकनीकी सहायक ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। श्रुतलेखन प्रतियोगिता में कुशल सहायी एवं दैनिक सहायी वर्ग में श्री रामशरण, कुशल सहायी कर्मचारी ने प्रथम, श्री वीरेन्द्र कुमार, कुशल सहायी कर्मचारी ने द्वितीय एवं श्री सुरेश कुमार शर्मा, कुशल सहायी कर्मचारी ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। अन्य 16 प्रतिभागियों को प्रतिभागिता पुरस्कार प्रदान किए गए। समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. एम.आर.मीना, वरिष्ठ वैज्ञानिक, गन्ना प्रजनन संस्थान ने निर्णायक मंडल की भूमिका भी निभाई। उन्होंने अपने संबोधन में राजभाषा हिंदी के महत्व पर प्रकाश डाला।

संस्थान के अध्यक्ष डॉ. विनोद कुमार पंडिता ने अपने संबोधन में कहा कि हिंदी में अपनी बात को समझना व समझाना बहुत ही आसान है। उन्होंने संस्थान के सभी कर्मचारियों द्वारा राजभाषा हिंदी के प्रोत्साहन में सहयोग देने पर खुशी जताई। उन्होंने सभी कर्मचारियों से अपील की कि वे हिंदी को व्यवहार की भाषा बनाएं क्योंकि हमारे लोक व्यवहार की भाषा हिंदी ही है। हिंदी के प्रति प्रेम और आदर की भावना रखने वाले कर्मचारियों की संख्या काफी बड़ी है और इस प्रगति को बनाए रखना हम सभी का कर्तव्य है।

कार्यक्रम के संयोजक डॉ. मुकेश कुमार सिंह, प्रभारी राजभाषा ने संस्थान में हो रहे हिंदी के उपयोग पर प्रकाश डाला और हिंदी में हो रही उत्तरोत्तर तरक्की को विस्तार में बताया।

सभी प्रतिभागियों को अध्यक्ष एवं मुख्य अतिथि द्वारा पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र देकर सम्मानित किया गया। अंत में श्रीमती सुशमा, सदस्य सचिव ने धन्यवाद प्रस्ताव के साथ समारोह का समापन किया।

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केंद्र, कटराईं, कुल्लू घाटी

हिंदी पखवाड़ा

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय स्टेशन कटराईं में दिनांक 14 सितंबर 2021 से 21 सितंबर 2021 तक हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया गया पखवाड़े के दौरान कार्मिकों के लिए वाद- विवाद, निबंध लेखन, लिखित प्रश्नोत्तरी, मौखिक प्रश्नोतरी तथा हिंदी शब्दावली का आयोजन किया गया। इस अवसर पर विभिन्न कर्मचारियों ने भाग लिया और हिंदी में कार्य को अधिक बेहतर तरीके से बढ़ाने के लिए विचार विमर्श किया गया। समापन समारोह में विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कृत किया गया।

क्षेत्रीय केंद्र, कटराईं, कुल्लू घाटी में हिंदी पखवाड़ा का आयोजन

कविता

निशब्द हूं पर चुप नहीं
मन कर रहा चीत्कार
शहीद हुए जवानों की काया देख
लहू खोल रहा बन ज्वार।

गरज गरज कर कह रही हर जवान लाश
जागो, उठो, भिड़ जाओ सब
ठहरना तभी जब कर आओ कातिलों का विनाश।

घर से कह कर चल दिए थे
मां हमारी राह तकना
अफसोस! सांसे छिन गई
वादा पूरा करते वरना।

खून, वर्दी, कर रहे पुकार
बंदूक पकड़ो बनो दीवार
आएंगे हम फिर से
करने दुश्मनों का संहार।

-अनुपमा

संरक्षित खेती

दूर अजैविक जैविक कारक से रख करके जब सुव्यवस्थित, बेमौसमी और सुरक्षित फसल उगाते हैं ।
कृषि वैज्ञानिक इसी व्यवस्था पर आधारित खेती को संरक्षित कृषि कहकर समझाते हैं ।।
दो सौ वर्षों पूर्व विदेशों में होती थी तीन दशक पहले भारत ने था अपनाया।
संसाधन, संरक्षण और तकनीकि नियन्त्रित इससे कृषि में क्रांतिपूर्ण परिवर्तन है आया।।
वर्तमान में शहरी परिनगरीय क्षेत्र में लघु और सीमांत किसानों ने भी है अपनाया।
मानवश्रम ईंधन कम लागत, न्यून जुताई वैज्ञानिक चिन्तन प्रयोग परिवर्तन है लाया।।
हरित गृह में रख तापमान अनुकूलित, कम लागत में बहुत अधिक उत्पादन हैं पाते।
यदि हो उचित प्रबंधन, खर-पतवार व कीट-पतंगों के प्रकोप भी पॉलीहाउस में कम ही हैं देखे जाते।।
रासायनिक उर्वरक कीटनाशक प्रयोग कम कर, फसलों के अवशेषों से भी उर्वरक हैं बनाते।।
उत्पादन गुणवतापूर्ण स्वास्थ्यवर्धक हो, पर्यावरण प्रदूषण से भी हैं हम बच जाते।
मृदा वायु जल की गुणवता कर संरक्षित जैवविविधता में भी गुणात्मकता हैं पाते।
इसीलिए तो वैज्ञानिक हम सभी के लिए, संरक्षित कृषि को उपयोगी हैं बतलाते।
उर्जा जल व उर्वरता को धरती संचित करती है। संरक्षित खेती करने से उपजाऊ मिट्टी होती है।
मानव श्रम व ईंधन की भी बचत खूब हो जाती है। संरक्षित कृषि में मिट्टी को न्यून जुताई ही भाती है।
नीदरलैंड जापान रूस ब्रिटेन चीन में दो सदी पुरानी है। संरक्षित खेती भारत ने तीन दशक से जानी है।
नवीन तकनीकि के पराबैंगनी रोधी पॉलीथीन का आवरण बनाते हैं।
वातावरण नियंत्रित करके बेमौसमी फसल उगाते हैं।।
प्लास्टिक लो, हाई टनल और ग्रीनहाउस बनाते हैं।
कीट अवरोधी नेट हाउस व जैव अपघटित प्लास्टिक मल्चिंग भी अपनाते हैं।
जल हानि रोकने को बौछारी व टपक सिंचाई करते हैं।
हरी खाद का भी कर प्रयोग उर्वरता खेत में भरते हैं।
निम्न उत्पादकता व निम्न गुणवता को अब दूर भगाना है।
संरक्षित कृषि को प्रचारित कर हर किसान तक पहुंचाना है।

अरुण कुमार द्ववेदी,
संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केंद्र

पुरस्कार व सम्मान

मूलरूप से सरकारी कामकाज हिंदी में करने के लिए नकद पुरस्कार योजना (2020-21)			
क्र.सं.	नाम व पदनाम	पुरस्कार	धनराशि
1.	श्री धीरज कुमार, अवर श्रेणी लिपिक, सतर्कता अनुभाग निदेशालय	प्रथम	5000/-
"सर्वश्रेष्ठ राजभाषा नोडल अधिकारी पुरस्कार प्रतियोगिता" (2020-21)			
1.	डॉ. अनिल कुमार मिश्र, प्रधान वैज्ञानिक, जल प्रौद्योगिकी केंद्र, भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली		2,500/-
2.	डॉ. अरुण कुमार शुक्ला, प्रधान वैज्ञानिक, क्षेत्रीय केंद्र, शिमला		

संस्थान के विभिन्न संभागों/इकाइयों/अनुभागों/क्षेत्रीय केंद्रों के बीच वर्ष 2020-21 में आयोजित हिंदी व्यवहार प्रतियोगिता			
क्र.सं.	प्रतियोगिताएं	संभाग/इकाई/अनुभाग/केंद्र	स्थान
1.	हिंदी व्यवहार प्रतियोगिता (संभाग स्तर पर)	जल प्रौद्योगिकी केंद्र	प्रथम पुरस्कार
		कीट विज्ञान संभाग	द्वितीय पुरस्कार
2.	हिंदी व्यवहार प्रतियोगिता (क्षेत्रीय केंद्र स्तर पर)	भा.कृ.अनु.सं., क्षेत्रीय केंद्र, करनाल	प्रथम पुरस्कार
		भा.कृ.अनु.सं., क्षेत्रीय केंद्र कटराईं, कुल्लू घाटी	द्वितीय पुरस्कार

हिंदी चेतना मास 2021			
(क)	**काव्य पाठ प्रतियोगिता (14.09.2021)**		
1.	डॉ. करूणा दीक्षित, मुख्य तकनीकी अधिकारी, पुस्तकालय सेवा इकाई	प्रथम	2500/-
2.	डॉ. राजेश कुमार, मुख्य तकनीकी अधिकारी, सूक्ष्मजीव विज्ञान संभाग	द्वितीय	2000/-
3.(i)	डॉ. निरूपमा सिंह, वैज्ञानिक, आनुवंशिकी संभाग	तृतीय	750/-
3.(ii)	श्री शिव कुमार सिंह, वरिष्ठ तकनीकी सहायक, आनुवंशिकी संभाग	तृतीय	750/-
4.	डॉ. गिरिजेश सिंह, महरा, वैज्ञानिक, कृषि प्रसार संभाग	प्रोत्साहन	600/-
5.	डॉ. पी.के. सिंह, प्रधान वैज्ञानिक, संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केंद्र	प्रोत्साहन	600/-
(ख)	**आशुभाषण प्रतियोगिता (16.09.2021)**		
1.	डॉ. रेणु सिंह, वरिष्ठ वैज्ञानिक, पर्यावरण विज्ञान संभाग	प्रथम	2500/-

2.	श्री शिव कुमार सिंह, वरिष्ठ तकनीकी सहायक, आनुवंशिकी संभाग	द्वितीय	2000/-
3.	डॉ. दिनेश कुमार शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक, पर्यावरण विज्ञान संभाग	तृतीय	1500/-
4.	श्रीमती नीलम, सहायक प्रशासनिक अधिकारी, सुरक्षा अनुभाग, निदेशालय	प्रोत्साहन	600/-
5.	डॉ. मो. अलीमुद्दीन खान, प्रधान वैज्ञानिक, मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग	प्रोत्साहन	600/-
(ग)	**वाद विवाद प्रतियोगिता (18.09.2021**		
1.	डॉ. राजेश कुमार, मुख्य तकनीकी अधिकारी, सूक्ष्मजीव विज्ञान संभाग	प्रथम	2500/-
2.	डॉ. प्रांजल यादव, वैज्ञानिक, पादप कार्यिकी संभाग	द्वितीय	2000/-
3.	डॉ. दिनेश कुमार शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक, पर्यावरण विज्ञान संभाग	तृतीय	1500/-
4.	डॉ. गिरिजेश सिंह महरा, वैज्ञानिक, कृषि प्रसार संभाग	प्रोत्साहन	600/-
5.	सुश्री शिवानी चौधरी, सहायक, कार्मिक-5, अनुभाग निदेशालय	प्रोत्साहन	600/-
(घ)	**टिप्पण एवं मसौदा लेखन प्रतियोगिता (21.09.2021)**		
1.	श्री आनंद विजय दुबे, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, कैटेट	प्रथम	2500/-
2.	श्री शशिकान्त सिन्हा, सहायक, जल प्रौद्योगिकी केंद्र	द्वितीय	2000/-
3.	श्री बलदेव राज, सहायक प्रशासनिक अधिकारी, कार्मिक-3 अनुभाग, निदेशालय	तृतीय	1500/-
4.	श्री हरीश कुमार नारंग, सहायक, कार्मिक-5, अनुभाग, निदेशालय	प्रोत्साहन	600/-
5.	श्री अश्वनी कुमार, सहायक, कार्मिक-3 अनुभाग, निदेशालय	प्रोत्साहन	600/-
(ड़)	**प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता (23.09.2021)**		
1.	श्री शशिकान्त सिन्हा, सहायक, जल प्रौद्योगिकी केंद्र	प्रथम	2500/-
2.	श्री नरेश चंद्र बौड़ाई, सहायक, स्नातकोत्तर विद्यालय-I, निदेशालय	द्वितीय	2000/-
3.	डॉ. अतुल कुमार, प्रधान वैज्ञानिक, बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संभाग	तृतीय	1400/-
4.	श्री सुरेश चंद शर्मा, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, मृदा विज्ञान संभाग	प्रोत्साहन	600/-
5.	श्री राजेन्द्र शर्मा, मुख्य तकनीकी अधिकारी, कृषि ज्ञान प्रबंधन इकाई	प्रोत्साहन	600/-
(च)	**सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता (29.09.2021)**		
1.	श्री नवीन कुमार, दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी, बायोमास यूनिट	प्रथम	2500/-
2.	श्री राम बिलास साह, कुशल सहायी कर्मचारी, कार्मिक-III, अनुभाग, निदेशालय	द्वितीय	2000/-
3.	श्री अमरनाथ चौधरी, दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी, आनुवंशिकी संभाग	तृतीय	1500/-

4.	श्री राज नंदन सिंह, कुशल सहायी कर्मचारी, आनुवंशिकी संभाग	प्रोत्साहन	600/-
5.	श्री विजय कुमार शर्मा, कुशल सहायी कर्मचारी, आनुवंशिकी संभाग	प्रोत्साहन	600/-
(छ)	**हिंदी टंकण प्रतियोगिता (13.10.2021)**		
1.	श्री अजय कुमार, अवर श्रेणी लिपिक, मधुमक्खी परियोजना, कीट विज्ञान संभाग	प्रथम	2500/-
2.	श्री आनंद विजय दुबे, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, कैटेट	द्वितीय	2000/-
3.	श्री कुमार नंद लाल, टी-2, खाद्य विज्ञान एवं फसलोंत्तर प्रौद्योगिकी संभाग	तृतीय	1500/-
4.	श्री अभिषेक वत्स, अवर श्रेणी लिपिक, व्यक्तिगत दावा अनुभाग	प्रोत्साहन	600/-
5.	श्री प्रमोद कुमार, अवर श्रेणी लिपिक, प्राप्ति एवं निर्गम अनुभाग, निदेशालय	प्रोत्साहन	600/-

हताश न होना सफलता का मूल है और यही परम सुख है। उत्साह मनुष्य को कर्मो में प्रेरित करता है और उत्साह ही कर्म को सफल बनाता है।

- वाल्मीकि

आलस्य मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है और उद्यम सबसे बड़ा मित्र, जिसके साथ रहने वाला कभी दुखी नहीं होता।

- भर्तृहरि

प्रो. एम एस स्वामीनाथन पुस्तकालय
Prof. M S SWAMINATHAN LIBRARY